एशिया की ज्योति

(लाइट ऑफ एशिया)

मूल लेखक : सर एडविन आर्नाल्ड

संस्कारक : हृषीकेश शरण

एशिया की ज्योति

(लाइट ऑफ एशिया)

एशिया की ज्योति

(लाइट ऑफ एशिया)

मूल लेखक : सर एडविन आर्नाल्ड

संस्कारक : हृषीकेश शरण

यह पुस्तक सादर समर्पित है

मेरे परम पूजनीय

दादीजी एवं दादाजी

नानीजी एवं नानाजी

माताजी एवं पिताजी

एवं

समस्त पूर्वजों को

* * *

जिनकी कृपा के बिना यह संभव नहीं था।

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

मूल लेखक का प्राक्कथन

निम्नलिखित कविता काव्य में मैंने एक काल्पनिक बौद्ध भिक्षु कवि के माध्यम से भारतवर्ष के उदारचेत्ता वीर ओजस्वी नायक और सुधारक राजकुमार गौतम के जीवन चरित्र और उनके दर्शन को, जिन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की, चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

एक पीढ़ी पूर्व तक यूरोप में एशिया के इस महान आस्था के विषय में नाममात्र या नहीं के बराबर ज्ञान था यद्यपि इसका अस्तित्व चौबीस सौ वर्षों से रहा है और आज अनुयायियों की संख्या और प्रभाव-क्षेत्र की दृष्टि से यह अन्य किसी भी मत से अधिक विशाल है। संसार के 47 करोड़ अनुयायी बुद्ध की शिक्षा का अनुपालन करते हुए जीते-मरते हैं और इस प्राचीन आचार्य का आध्यात्मिक प्रभाव क्षेत्र वर्त्तमान में नेपाल से श्रीलंका तक, संपूर्ण पूर्वी प्रायद्वीप, चीन, जापान, तिब्बत, मध्य एशिया, साइबेरिया और यहाँ तक कि सुदूर स्वीडन के लैपलैंड तक विद्यमान है। हिन्दुस्तान का नाम भी आस्था के इस विशाल साम्राज्य में जोड़ना उचित ही होगा यद्यपि बौद्ध धर्म का अनुपालन अधिकांशत: इसकी जन्मभूमि से ही लुप्त हो गया है पर गौतम के उत्कृष्ट शिक्षा की अमिट छाप आधुनिक ब्राह्मणवाद पर देखी जा सकती है और हिन्दुओं का अधिकांश विशिष्ट लक्षण, स्वभाव और उनकी दृढ़ मान्यताएं और विश्वास मुख्यत: बुद्ध की हितैषी शिक्षा का परिणाम है। इस प्रकार एक तिहाई से अधिक मानव जाति की नैतिक और धार्मिक सोच का श्रेय इस महान प्रदीप्तमान राजकुमार को जाता है जिनका व्यक्तित्व यद्यपि उपलब्ध ज्ञान के स्रोतों के आधार पर अपूर्ण रूप से उपलब्ध है फिर भी यह उच्चतम श्रेणी की पूर्ण भद्रता, श्रेष्ठता एवं पूर्ण पवित्रता की प्रतिमूर्ति एवं महान मंगलकारी है जो चिंतन के इतिहास में एक अपवाद के रूप में दृष्टिगत होता है। पुनरावृत्त ब्योरों में विसंगति, बेमेल दु:खद विकृति के बोझ, शोधों और भ्रांतियों के कारण उत्पन्न विचारों की भिन्नता के बावजूद समस्त बौद्ध

साहित्य एक बिंदु पर सर्वसम्मत हैं कि ऐसा कहीं भी, कुछ भी लिखित उपलब्ध नहीं है - एक भी कर्म या शब्द - जो हिन्दुस्तान के इस शिक्षक की पूर्ण पवित्रता और उनकी उदारता को ओछा दिखाता हो, जिन्होंने सचमुच ही राजपरिवार के गुणों का एक ऋषि की प्रज्ञा और एक शहीद की तीव्र, उत्कट भक्ति के साथ समन्वय किया।

यहाँ तक कि एम. बार्थलेमी संत हिलारे ने भी जिन्होंने पूरी तरह से बौद्ध धर्म के अनेक बिंदुओं को सर्वथा गलत समझा है, उनको भी उद्धृत करते हुए प्रो. मैक्समूलर राजकुमार सिद्धार्थ के विषय में कहते हैं, "राजकुमार सिद्धार्थ का जीवन सर्वथा निश्कलंक है। उनके अन्दर व्याप्त अनवरत दृढ़ता ही उनके जीवन दर्शन का प्रतीक है। उन्होंने जिन धर्म सिद्धांतों को प्रसारित किया है भले ही उन पर प्रश्न उठाये जा सकते हैं, परन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत जीवन शैली निर्विवाद है। अपने द्वारा दिए गये धर्मोपदेशों के वे स्वयं ही जीवंत उदाहरण हैं।

उनके समर्पण, उदारता एवं दैवीय निश्छलता को एक क्षण के लिए भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। छह साल के एकांत चिंतन-मनन के उपरांत वे अपने धर्मसिद्धांतों को प्रसन्न रूप से प्रतिपादित करते रहे और पाँच दशकों से भी अधिक समय तक वे अटूट विश्वास के साथ अपनी दैव-वाणी द्वारा उनका प्रसार करते रहे। एक ऐसे महान संत जिन्होंने जीवन पर्यन्त सद्कर्म किए एवं अंतिम सत्य का साक्षात्कार करने के पश्चात् भी लोकहितार्थ तब तक कार्य करते रहे जब तक अपने शिष्यों की बाहों में परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं हो गए।" इस फलस्वरूप गौतम को ही मानवता के इस विस्मयकारक विजय का श्रेय जाता है और यद्यपि उन्होंने कर्मकांडों एवं धार्मिक अनुष्ठानों की भर्तस्ना की और यहाँ तक कि निर्वाण के द्वार पर भी खड़े होकर घोषणा की कि वे मात्र वही थे जो सभी बन सकते हैं। तथापि, प्रेम और श्रद्धावश एशिया के भक्तगण उनकी

आज्ञा का उल्लंघन कर उत्साहपूर्वक श्रद्धावश उनकी पूजा आराधना करते हैं। प्रतिदिन जंगलों की मात्रा में पुष्प उनके निष्कलंक पवित्र तीर्थ-मंदिरों में चढ़ाए जाते हैं और लाखों अनगिनत मुख बौद्ध मंत्र का जाप करते हैं : "बुद्धं शरणम् गच्छामि।"

इस कविता के बुद्ध, के अस्तित्व के बारे में कोई शंका नहीं होनी चाहिए कि वस्तुतः उनका अस्तित्व था, का जन्म ईसा पूर्व 620 ईसवी में नेपाल सीमा पर तथा देहावसान 543 ईसा पूर्व अवध राज्य के कुशीनगर में हुआ था। इस प्रकार उम्र के आधार पर अधिकांश अन्य मत-संप्रदाय इस वन्दनीय महान धर्म की तुलना में अभी भी किशोरावस्था में ही हैं जिसमें सर्वव्यापक आशा का शाश्वतपन, असीम प्रेम की अमरता, अंततः अनश्वर कल्याण की आस्था का तत्व और मानव मुक्ति हेतु कभी भी व्यक्त सर्वाधिक स्वाभिमानी सशक्त अभिकथन - ये सभी समाहित हैं। बौद्ध साहित्य और इस धर्म के अनुपालन में जो अमर्यादा का कलंक दिखता है वह इस धर्म के अपरिहार्य पतन के कारण हुआ है जो सामान्यतः पुजारी-प्रपंच द्वारा सदैव उनको प्रदत्त उन महान विचारों एवं शिक्षा की छेड़छाड़ के कारण उत्पन्न होता है। गौतम के मूल सिद्धांत की शक्ति एवं महत्ता का आकलन उनके प्रभाव के आधार पर होना चाहिए, न कि उनके दुभाषिये द्वारा और न तो उन अबोध किन्तु आलसी और धार्मिक रस्मों के आधार पर जो बौद्ध धर्म के भ्रातृत्व अर्थात् 'संघ' द्वारा सृजित हैं।

मैंने अपनी कविता को एक बौद्ध भिक्षु के मुखारबिंद के माध्यम से प्रस्तुत किया है क्योंकि एशिया की विचार धारा की आत्मा की अनुशंसा हेतु उन्हें पूर्व के दृष्टिकोण से ही देखा जाना चाहिए अन्यथा न तो पुस्तक में वर्णित चमत्कार और न इसमें समाविष्ट दर्शन का वृत्तांत ही स्वाभाविक और सहज ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता था। उदाहरण के लिए

पुनर्जन्म का सिद्धान्त जो आधुनिक मानसिकता को चौंका देता है बौद्ध काल में पूर्णतः स्थापित तथा हिन्दुओं द्वारा स्वीकृत हो चुका था; उस समय जब नेबूचडनेजार जेरूसलम पर अधिकार जमाने जा रहा था और जब नीनेवे का मेडीस के हाथों पतन हो रहा था और जब फोनिशियन ने मरसीलिज की स्थापना की थी। यहाँ प्रतिपादित अति पुरातन काल के वृत्तांत का अवश्य ही आधा-अधूरा रहना स्वाभाविक है क्योंकि कविता कला की आज्ञा का अनुपालन करते हुए अनेक दार्शनिकता के दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण विषयों पर और गौतम के लंबे कार्यकाल पर मात्र सरसरी ढंग से प्रकाश डाला गया है। लेकिन इस पवित्र राजकुमार के स्वर्णिम उदात्त चरित्र की अवधारणा के विषय में बताकर और उनकी शिक्षा के सामान्य अभिप्राय को प्रतिपादित कर मेरे उद्देश्य की पूर्ति हो गई है। इन परवर्ती विषयों पर सुशिक्षित पंडितों के बीच आश्चर्यजनक वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है जो संभवतः अवगत होंगे कि मैंने अपूर्ण बौद्ध उद्धरणों का सहारा लिया है जैसे स्पेन्सर हार्डी की रचनाओं में मिलते हैं और प्राप्त आख्यान में एक से अधिक उद्धरणों को संशोधित भी किया है। किन्तु यहाँ पर 'निर्वाण', 'धर्म', 'कर्म' और बौद्ध धर्म के अन्य विषयों पर दृष्टिकोण कम से कम विचारशील गहरे अध्ययन का प्रतिफल है और इस सुनिश्चित दृढ़ सोच का परिणाम है कि एक तिहाई मानव जाति को न तो शून्य, कोरी परिकल्पना में विश्वास दिलाया जा सकता है और न ही निराकार और प्राणियों के शीर्ष विजेता में आस्था ही जगाई जा सकती है।

अंततः इस 'लाइट ऑफ एशिया' के लब्ध प्रतिष्ठित प्रवर्तक के प्रति श्रद्धावश और उन अनेक ज्ञानी श्रेष्ठ विद्वानों को श्रद्धांजलि के रूप में जिन्होंने उनकी स्मृति में योग्य श्रम समर्पित किया है, जिसके लिए आत्म संयम और योग्यता दोनों का मुझमें अभाव है। मेरी प्रार्थना है कि अति शीघ्रता में किए गए अध्ययन से उठी कमियों के लिए मुझे क्षमा प्रदान

करें। यह रचना बिना किसी अवकाश के समय के छोटे-छोटे अन्तराल में लिखी गई है, लेकिन यह मेरे प्राच्य एवं पाश्चात्य के पारस्परिक ज्ञान और बेहतर समझदारी की दृढ़ अभिलाषा से प्रेरित है। संभवत : वह समय आयेगा, मैं आशा करता हूँ, जब यह पुस्तक और मेरी "इंडियन सांग ऑफ सांग्स" एवं "इंडियन इडिल्स" उस व्यक्ति की यादों को बनाए रखेगी जो भारत और भारतीयों को प्यार करता था।

एडविन आर्नाल्ड।

आमुख

शाक्य मुनि बुद्ध को बौद्ध धर्म में 'विश्व-ज्योति' कहकर संबोधित किया गया है। सर एडविन आर्नाल्ड ने बुद्ध के जीवन से प्रेरणा लेकर पूरे विश्व को उनके सारगर्भित संदेश से अवगत कराने के लिए 'लाइट ऑफ एशिया' काव्य ग्रंथ की रचना की। उन्होंने सिद्धार्थ बुद्ध को 'लाइट ऑफ एशिया' के रूप में क्यों प्रस्तुत किया इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। शायद इसलिए कि सिद्धार्थ का जन्म एशिया महाद्वीप में हुआ था तथा इसलिए भी कि 'लाइट ऑफ एशिया' धर्मग्रन्थ की रचना करते समय महाकारुणिक बुद्ध का संदेश एशिया महाद्वीप तक ही सीमित था। संभवतः इन्हीं दो कारणों से 'लाइट ऑफ एशिया' नामकरण किया होगा। पर यह मेरा अनुमान है यदि उस समय लेखक ने इस ग्रंथ का नाम 'लाइट ऑफ एशिया' नहीं दिया होता तो शायद यह इतना जनप्रिय नहीं होता। पश्चिमी देशों के लोग एशिया की संस्कृति के बारे में आज भी कौतूहलपूर्वक खोज-बीन करते हैं क्योंकि यहाँ की संस्कृति और दर्शन उनके लिए अभी भी रहस्य का विषय है। इसके भी कई कारण हैं- रामचरितमानस के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम, महाभारत के कृष्ण, चाणक्य, कन्फ्यूसियस जैसे महादार्शनिकों का उद्भव एशिया में ही हुआ है। वेद-वेदान्तों में सांसारिक दर्शन एवं जीवन दर्शन के साथ ही साथ धर्म दर्शन का उल्लेख भी बड़ी गंभीरता से किया गया है। सनातन धर्म के दर्शन इतने गंभीर हैं कि इनको जानने-समझने के लिए पश्चिमी देशों के

विद्वानों में सदा उत्सुकता बनी रहती है।

सिद्धार्थ ने बोद्धिसत्व के रूप में सारा संख्य कल्पलक्ष तक दान, शील, प्रज्ञा, नैरासक्रम्य, सत्य आदि पारमिताएं इसलिए प्राप्त कर लीं ताकि दुखीजनों को सुखिता-मुदिता का नया मार्ग दिखाकर दुख एवं निराशा से भरे हुए संसार से मुक्ति दिला सकें।

इस भौतिक संसार में बुद्ध का अंतिम जन्म राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में एक सनातन परिवार में हुआ था। उस राज परिवार में उन्हें किसी भी भौतिक सुख-सामग्री या सांसारिक सुख की कमी नहीं थी पर संसार के दु:खों का कारण व निवारण जानने हेतु महाभिनिष्क्रमण किया था। महाभिनिष्क्रमण के बाद सिद्धार्थ उस समय के जम्बूद्वीप के प्रसिद्ध ऋषिमुनि जैसे आलार कलाम, उद्धक रामपुत्र के पास जाकर आध्यात्मिक दीप जलाने के मार्ग के बारे में विचार-विमर्श कर चिंतन-मनन किया। उनके साथ विचार-मंथन एवं ध्यान- भावना के बाद भी तपस्वी सिद्धार्थ कि आभिलाषा पूरी नहीं हो सकी। तत्कालीन भारतवर्ष में जितने सम्मानित ऋषि-मुनि थे उन सभी से सम्पर्क किया और जो भी आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण हो सकता था उसे ग्रहण किया । तब भी तपस्वी सिद्धार्थ का मनोरथ पूरा नहीं हो पाया। तत्पश्चात उन्होंने कामसुखखलिकानुयोग और अत्तकिलमतानयोग दोनों को त्यागा। फिर गयाशीर्ष में एक विशाल पीपल के पेड़ (बोधिवृक्ष) के नीचे बैठकर दसब्रिंबरमारसेना को पराजित किया। तत्पश्चात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प आदि आठ अंगों से परिपूर्ण मध्यम मार्ग के माध्यम से बुद्ध-ज्ञान-लाभ (बुद्धत्व) प्राप्त किया। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद सिद्धार्थ 'महाकारुणिक बुद्ध' के नाम से जाने गए।

'लाइट ऑफ एशिया' का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और इसके कई संस्करण अनेक बार प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत कृति 'एशिया की ज्योति' एक नूतन प्रयास है। एडविन आर्नाल्ड का मूल पाठ पद्य के रूप में है। अब हिन्दी पाठकों को यह कृति सरल, सुगम खड़ी

हिन्दी में 'लाइट ऑफ एशिया' को गद्य रूप में प्रस्तुत करने की दिशा में एक प्रयास है। मुख्य आयुक्त हृषीकेश शरण ने हिन्दी एवं धर्मप्रिय पाठकों के सम्मुख इस रचना को प्रस्तुत कर एक महान कार्य किया है।

इस महान कार्य में योगदान देने के लिए श्री हृषीकेश शरण को महाबोधि सोसाइटी ऑफ इण्डिया की तरफ से त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करता हूँ।

भवतु सव्व मंगलम।

डा. डी रेवत् थेरो
महासचिव
महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया

कोलकाता,
दिसंबर, 2009

प्रस्तावना

सन् 1879 में कवि सर एडविन आर्नाल्ड की कालजयी रचना "लाइट ऑफ एशिया" पहली बार इंगलैंड में प्रकाशित हुई थी। उनका यह महाकाव्य शाक्य-मुनि गौतम बुद्ध के जीवन पर आधारित है। प्रकाशित होते ही इस पुस्तक ने पाश्चात्य जगत् में महात्मा बुद्ध की महानता की अपार धूम मचा दी थी। पश्चिमी जगत् इस राजकुमार महात्मा के गरिमामय चरित्र से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि इंगलैंड में इसके 60 और अमेरिका में 80 संस्करण छपे और तब से इस पुस्तक के संस्करण छपते ही चले जा रहे हैं। संसार की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

प्रसिद्ध आलोचक, इतिहासकार और कवि रामचंद्र शुक्ल ने इस पुस्तक का "बुद्धचरित" नामक कविता-काव्य के रूप में ब्रजभाषा में अनुवाद किया। शुक्लजी का यह अनुवाद सन् 1922 में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ। अपने अनुवाद को शुक्लजी ने मूल की अपेक्षा अधिक कलात्मक बना दिया।

खड़ी बोली में 'लाइट ऑफ एशिया' के अनुवाद की कमी महसूस होती रही। अत: वर्ष 2007 में मैंने शुक्लजी की ब्रजभाषा की कृति को आधार बनाकर उसका सरल हिंदी में "जगदाराध्य तथागत" के नाम से पद्यानुवाद कर दिया।

कविता के प्रति घटते हुए रुझान को देखते हुए मेरे एक मित्र ने करीब 6 मास पूर्व सलाह दी कि "जगदाराध्य तथागत" का गद्यानुवाद पाठकों को अधिक प्रिय लगेगा। अत: मैंने उनके सुझाव पर इसका गद्यानुवाद 'एशिया की ज्योति' के रूप में किया है जो अब आपके हस्तकमलों में प्रस्तुत है।

एडविन आर्नाल्ड ने 'लाइट ऑफ एशिया' की प्रस्तावना में लिखा है कि संसार का सारा बौद्ध साहित्य कम से कम एक बिंदु पर पूर्णतः एक मत है, विभिन्न धाराओं में मतैक्य है कि इस महान शिक्षक के दयामय, करुणामय और परम पवित्रता से परिपूर्ण चरित्र में एक भी दोष या कलंक नहीं दिखता। मानव के अंदर विद्यमान चरम सर्वश्रेष्ठ गुणों का इस चरित्र में समावेश देखा गया है और इस प्रकार बुद्ध समस्त मानव जाति की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हैं।

बुद्ध हम सभी की तरह ही मानव थे और बुद्धत्व से पूर्व (बोधिसत्व तक) जातक कथाओं में इसका उल्लेख आता है कि उनके अंदर भी कमजोरियाँ थीं, पर उन्होंने उन कमजोरियों से भी शिक्षा ग्रहण की और उन्हें सोपान बना आगे बढ़ते गए। जीवन के सत्य को देखा तो उसे नकारा नहीं और ईमानदारी से उसकी शोध में जुट गए। हम भी सैकड़ों बीमार, बूढ़े और मृत को देखते हैं पर जन्म-जरा-मृत्यु की समस्या से मुँह मोड़ लेते हैं क्योंकि हमें तत्काल ही सांसारिक वस्तुएं पुनः शाश्वत दिखने लगती हैं। इस कारण हम जीवन पर्यन्त एवं एक जीवन से दूसरे जीवन में अपनी सांसारिक परिधि में ही घूमते रहते हैं। सिद्धार्थ के लिए समस्या की गंभीरता दर्शाने के लिए एक मृत ही पर्याप्त था जैसे उबले हुए मात्र एक दाने से ही पता चल जाता है कि चावल पक गया या नहीं। उन्होंने उस समस्या को पकड़े रखा, उससे जूझते रहे, अंत तक उसे छोड़ा नहीं। अंततः निराश होकर समस्या को अपना स्वरूप दिखाना पड़ा, अपना रहस्य खोलना पड़ा। वे 'गौतम' से 'गौतम बुद्ध' और 'मानव' से 'महामानव' हो गए।

बुद्ध का चरित्र इतना सशक्त व दीप्तिमान है कि इससे कोई भी समर्पित पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। तथागत के जीवन से प्रेरणा ले हम सभी त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म एवं संघ) में स्थापित हों, जीवन के उद्देश्य को खोज एवं समझ सकें (जैसी खोज शाक्य मुनि ने 2500 वर्षों

पूर्व की थी), मेरी शाक्य-मुनि से यही करबद्ध प्रार्थना है।

यद्यपि मैंने इस पुस्तक को हर प्रकार से शुद्ध रखने का प्रयत्न किया है फिर भी प्रमादवश अशुद्धियाँ होना स्वाभाविक है क्योंकि इस पुस्तक में मैंने व्याकरण की तुलना में सार एवं भाव पर अधिक ध्यान दिया है। अतः अगर व्याकरण की कोई त्रुटि दिखे तो पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे। उनसे अनुरोध है कि वे इन त्रुटियों को सूचित करने का कष्ट करेंगे ताकि भविष्य में उन त्रुटियों को सुधारा जा सके।

मैं उन सभी का कृतज्ञ हूँ जिनके अथक प्रयास और मदद से यह कृति आपके हाथों में पहुँच सकी। वे सभी भी त्रिरत्न के आशीर्वाद के पात्र हैं।

मैं मुद्रक एच. ए. एन्टरप्राइज, कोलकाता को भी इस पवित्र कार्य के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ।

हृषीकेश शरण

(हृषीकेश शरण)

कोलकाता,

दिसंबर, 2009

प्रथम सर्ग
जन्म के पूर्व की कथा

यह कथा विश्व के तारणहार भगवान बुद्ध की है जो इस धरा पर राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में अवतरित हुए थे। त्रिभुवन में अतुलनीय, परम पूज्यवर, करुणानिधान, सर्वबुद्धिमान, सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक दयावान एवं सर्व सम्मानित विद्वतप्रवर, बुद्ध का पुनः अवतरण इस जगत को भवसागर के पार ले जाने के लिए हुआ था। धर्म चक्र के संस्थापक, निर्वाण के गुरू, मानव शरीर की नश्वरता को अति सूक्ष्मता और गहराई से समझने वाले दयामय बुद्ध सर्वदा सम्यक् पथ-प्रदर्शन हेतु उद्यत रहते हैं। सर्वोत्तम शुभ ग्रहयोग में मानव जाति के उद्धार एवं पुनर्जागरण हेतु वे पुनः अवतरित हुए थे।

सदियों से इस सुव्यवस्थित जगत में पवित्र आत्माएं अपना शरीर त्यागने के पश्चात् तीस हजार वर्षों तक प्रतीक्षारत रहने पर एक नया जीवन धारण करती हैं। बुद्ध भी ऐसे ही प्रतीक्षारत थे जब उनके जन्म के पाँच महत्वपूर्ण चिन्ह प्रकट हुए। देवताओं को उन चिन्हों का ज्ञान था। अतः उन्होंने कहा, "बुद्ध फिर संसार में जन कल्याण के लिए मानव शरीर धारण करेंगे।"

बुद्ध ने भी स्पष्ट किया, "मैं संसार की मदद करने जा रहा हूँ। अनेक बार गया हूँ और अब अंतिम बार फिर जा रहा हूँ। जो जन निमग्न होकर धर्म और मेरे नियमों का पालन करेंगे, वे सभी जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाएंगे। मैं हिमालय के दक्षिण में अवस्थित शाक्य वंश में जन्म लूँगा, जहाँ (भारत-नेपाल की वर्तमान सीमा पर स्थित कपिलवस्तु) एक न्यायप्रिय राजा शासन करते हैं एवं जहाँ धर्मनिष्ठ प्रजा विराजती है।"

महारानी का स्वप्न

उसी रात शाक्यवंशी महाराजा शुद्धोदन की पत्नी माया ने प्रातः प्रहर एक विचित्र स्वप्न देखा, "गुलाबी किरणों से दीप्तमान एक भव्य तारा स्वर्ग से निकला, जो पहले छहदंती हाथी और फिर श्वेत कामधेनु के रूप में बदल गया और फिर परिशून्य से तेजी से उतरकर दाहिनी ओर से रानी के गर्भ में प्रवेश कर गया ।" महारानी उसी रात गर्भवती हो गईं। इस आनन्ददायी विनियोग का प्रभाव पाताल-लोक तक हुआ, ऐसा लगा जैसे अंधेरे को चीर कर सूर्य का प्रकाश अत्यधिक प्रखर हो उठा है। रानी जागीं तो उन्हें एक ऐसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई, जिसकी इससे पूर्व इस मृत्युलोक में किसी माता को कभी नहीं हुई थी। रानी की प्रसन्नता का असर चारों तरफ दिखने लगा। ब्रह्मवाणी ने घोषणा की, "बुद्ध का पदार्पण हो चुका है" जिसे सुन कर सकल जड़-चेतन, चराचर जगत आन्दोलित हो उठा। लहरें शांत हो गईं, पर्वत हिल गये। पूर्व दिशा में नवप्रभात का ऐसा मनोरम दृश्य उत्पन्न हुआ मानो धरा का प्रत्येक कण प्रदीप्तमान हो उठा हो। दोपहर में खिलने वाले फूल प्रातः प्रहर ऐसे खिलने लगे, मानो दोपहर हो गई हो। स्वर्ग के सभी हिस्सों में अथाह शांति व्याप्त हो गई। नई ताजगी से परिपूर्ण हवा धरती और समुद्र पर बहने लगी। ज्ञानी मुनीवर समझ गए कि जगत में कुछ अद्‌भुत एवं अलौकिक कार्य अवश्य हो चुका है।

सुबह होते ही एक सिद्ध स्वप्न-वाचक आए और नृपति से कहा, "स्वप्न उत्तम है। कर्क एवं सूर्य के उत्तम योग से रानी एक स्वस्थ, सुन्दर एवं पावन पुत्र को जन्म देंगी जो अत्यन्त चमत्कारी व विवेकशील होगा एवं संपूर्ण धरा के लिए कल्याणकारी होगा तथा जनहितैषी परोपकारी ज्ञान देकर मानव जाति को अज्ञानता की दासता से मुक्त करायेगा। अन्यथा यदि वह शासन करने की कृपा करेगा तो सारे संसार का सम्राट होकर पूरे विश्व पर शासन करेगा।"

जन्म

प्रसव काल निकट आते ही महारानी अपने पिता के घर चल पड़ीं। वन से गुजरते हुए दोपहर हो गयी। महारानी उस सघन वन में पलाश के वृक्ष की डाली पकड़कर आराम करने लगीं। तभी वृक्ष की डालियाँ झुककर उनको छाया प्रदान करने लगीं एवं आकाश से बरसते फूल उनके मार्ग में कालीन के समान बिछने लगे। चट्टानों के वक्ष को चीरकर झरनों का निर्मल, शीतल जल उनकी प्यास बुझाने को लालायित हो उठा। ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति को भी बुद्ध के आगमन का आभास हो चुका था। इस मनोरम दृश्य का रसास्वादन कर सारी प्रकृति धन्य हो गई। ऐसे अति मनभावन स्थल पर महारानी ने बिना किसी कष्ट के राजकुमार सिद्धार्थ को जन्म दिया। कहते हैं कि यह अद्‌भुत बालक जन्म लेते ही सात कदम चला एवं जहाँ-जहाँ उसके चरण पड़े वहाँ-वहाँ धरती से कमल के फूल निकल आए। जन्म के समय बालक के तन पर 32 शुभ लक्षण अंकित थे। बुद्ध शिशु रूप में धरा पर ऐसे अवतरित हुए मानो प्रकृति की गोद में एक फूल सा शिशु अपनी मुसकान बिखेर रहा हो।

चरों द्वारा यह शुभ समाचार सुनते ही महाराजा ने महारानी माया व नवजात शिशु को बुलाने के लिए एक सुसज्जित, मृदुल, मनोहारी शाल से बनी, कलाकृतियों से परिपूर्ण अतिसुन्दर पालकी भेजी जिसे ढोने के लिए धरती के चारों दिशाओं के प्रतिशासक सुमेरू पर्वत से उतर आये थे। मनुष्यों का कर्मफल लिखने वाले वे प्रतिशासक उस नवजात शिशु के सम्मुख शीश नवाकर खड़े हो गए। पूर्व दिशा के देवदूत जो मोती युक्त चाँदी के वस्त्र धारण करते हैं, दक्षिण के देवदूत जिनके घुड़सवार कुंभनदास नीलम के ढाल युक्त नीले अश्वों की सवारी करते हैं, वे सभी आकर खड़े हो गए। पश्चिम के देवदूत जो मूंगा के लाल रंग के ढाल लिए, रक्त के समान लाल घोड़ों पर सवार होते हैं और उत्तर के देवदूत अपने यक्षों से घिरे हुए सुनहले ढाल से युक्त सुनहले घोड़ों पर सवार होकर

अद्वितीय सज-धज के साथ, अति प्रसन्न मन से धरती पर उतर आये और सामान्य वेश-भूषा धारण कर पालकी को कंधा देने लगे। पालकी के वाहक शक्तिशाली देवगण, मनुष्यों के मध्य सामान्य वेश-भूषा में स्वछन्द विचरण कर रहे थे एवं उन्हें कोई पहचान नहीं पा रहा था। इस प्रकार बुद्ध के मृत्युलोक में पुनः आगमन से धरती एवं स्वर्ग आनन्दमग्न हो गया।

स्वयं महाराजा भी उस समय अपने पुत्र के रूप में जन्म लेने वाले बुद्ध के बारे में कुछ नहीं जान पाये थे और बुद्ध को पहचान नहीं पा रहे थे। उधर कुछ अमंगलसूचक चिन्हों ने उन्हें दुःखी कर रखा था। तब स्वप्न द्रष्टाओं ने उनकी चिंता दूर करते हुए बतलाया कि राजकुमार सम्पूर्ण धरती का शासक बनेगा एवं ऐसे दक्ष चक्रवर्ती महाराजा हजारों वर्षों में एक बार शासन करने आते हैं। राजकुमार सात रत्नों (प्रतिभाओं) से विभूषित होंगे। उन्हें प्राप्त होंगे : प्रथम : चक्र-रत्न- ईश्वरप्रदत्त चक्र, द्वितीय : अश्व-रत्न - वह स्वाभिमानी अश्व जो बादलों पर भी यात्रा कर सकता है, तृतीय : हस्ति-रत्न - बर्फ के समान वह श्वेत गज जो मनुष्य को लेकर द्रुत गति से चलता है, चतुर्थ : जन्म से ही धैर्यवान, पंचम : नीतिज्ञ, षष्ठ : दिवाकर की भाँति अजेय एवं सप्तम : स्त्री रत्न - जिससे ऊषाकाल से भी अधिक सुन्दर, अद्वितीय लावण्य वाली सुखदायी पत्नी प्राप्त होती है। सुनकर राजा का हृदय हर्ष से उल्लासित हो गया।

आनन्दोत्सव

यह सब देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। महाराजा ने सोचा- "विद्वद्जनों से विचार-विमर्श करना सुफल ही होता है।" ऐसा सोचकर उन्होंने तत्काल नगर में श्रेष्ठतम उत्सव आयोजित करने का आदेश दिया। सारा जनमानस राजा के आदेश के अनुपालन में जुट गया। सड़कों को साफ किया जाने लगा एवं उस पर गुलाब के इत्र का छिड़काव किया जाने लगा। पताकाएं टाँगी जाने लगीं एवं दीपों का मेला सजाया जाने लगा।

प्रसन्नचित्त भीड़ आत्मविभोर हो तलवार युद्ध, बाजीगरों की कलाबाजी, सम्मोहक जादू, रस्सी पर कौतुक करती बालाओं इत्यादि के करतबों को देख रही थी और गदगद् हो रही थी। नर्तकियाँ सितारा लगे लँहगों को पहन, नख से शिख तक श्रृंगार कर, लयबद्ध ताल व समस्वर गीतों की धुनों पर नृत्य कर रही थीं। सभी इसका रसास्वादन कर रहे थे। कहीं मदारी भालू व बन्दर नचा रहे थे तो कहीं शिकारी खेल दिखा कर लोगों का मनोरंजन कर रहे थे। तीतर-बटेर का करतब और पहलवानों का दंगल भी दिखाया जा रहा था। ढोल, मंजीरे और सारंगी के सुर समा बाँध सभी के मन को हर्षित कर रहे थे। सभी व्यक्ति मंत्रमुग्ध हो कला व कलाकारों के रंग में डूबे हुए थे। व्यापारीगण सुदूर प्रान्तों से स्वर्ण-थाल में बहुमूल्य उपहार सजाकर ले आए थे। उनमें कुछ स्वर्ण जड़े वस्त्र तो ऐसे बारीक थे कि उन्हें बारह तह करने के बाद भी तन दिखलाई पड़ता था। ऐसे स्वर्णमय सुवसन वे थानों के थान लेकर आए थे। अनेक लोग चंदन की निर्मल व कीमती वस्तुएं उपहार स्वरूप लेकर आए थे। कई लोग मोतियों से जड़ा कीमती कमरबन्द भी ले आये।

शुभ मुहूर्त में राजकुमार का नामकरण हुआ एवं उन्हें सिद्धार्थ कहा गया अर्थात् 'सर्व सिद्ध, सर्व भाँति समृद्ध' या 'सर्वार्थसिद्ध' अर्थात् 'सभी का भला करने वाला'। उनके नाम का अर्थ भी बुद्ध के व्यक्तित्व की भाँति ही गंभीरता से परिपूर्ण था।

संत असित का आगमन

अंजान व्यक्तियों में एक श्वेत बालों वाले सांसारिकता से निरासक्त व निर्लिप्त, महान ज्ञानी वृद्ध संत असित भी आए जो स्वर्गिक भाषाविद थे अर्थात् स्वर्ग से निकली ध्वनि सुन सकते थे एवं उसका अर्थ समझ सकते थे। निर्मल काया के ये संत अद्‌भुत ज्ञानी व त्यागी थे। वे एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में बैठे हुए थे जब उन्होंने बुद्ध के जन्म

लेने पर देवताओं को मंगल गीत गाते हुए सुना था और उसे सुनकर वे उस अद्भुत बालक के दर्शन के लिए तत्काल चल पड़े थे। बालक को देखते ही उनके मुख से निकल पड़ा, "लगता है विश्व को प्रकाशमान करने के लिए सहस्त्र सूर्यो का सृजन हुआ है। परंतु मुझे खुशियों के साथ-साथ दु:ख का आना भी दिख रहा है।" उनके निकट आते ही राजा-रानी ने उन्हें देखकर शीश नवाया एवं उनके पवित्र चरणों पर श्रद्धावश अपने शिशु को आशीर्वाद देने के लिए रखना चाहा, पर संत ने तत्काल पैरों को पीछे खींचते हुए प्रलाप किया, "महारानीजी, आप यह क्या कर रही हैं ?" राजा-रानी उनकी ओर चकित हो आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। महासंत ने बालक को झुककर साष्टांग प्रणाम किया तथा उसके चरण-रज को माथे पर लगाकर कहा, "हे बालक ! मैं जिसकी पूजा करता रहा हूँ, आप वही हैं। आप ही धर्म-नियामक, जगतारक बुद्ध हैं : पैर के तलवे का चिन्ह एवं उससे निकलती गुलाबी आभा देख मैं निहाल हो रहा हूँ, स्वस्तिक का होना, पवित्र 32 शुभचिन्ह, 80 अन्य प्रमाण स्पष्ट कर रहे हैं कि आप ही बुद्ध हैं। आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ, परन्तु मेरे मन में एक भारी दु:ख भी है कि आपकी अमृतमयी वाणी एवं आपके द्वारा स्थापित पावन नियमों को मैं नहीं सुन पाऊँगा क्योंकि हे अवतारी! यह देह मर्त्य है और मैं यह नश्वर शरीर शीघ्र छोड़ने वाला हूँ, फिर आपकी अमृत-वाणी कैसे सुन पाऊँगा ?" उन्होंने फिर महाराज को संबोधित किया, "हे आदरणीय राजन ! आप भी आज जान लें एवं अपने पुत्र को भली-भाँति पहचान लें। यह ऐसा पुष्प है जो हमारे मानव वृक्ष पर करोड़ों वर्षों में एक बार खिलता है लेकिन खिलने पर संसार को ज्ञान के सुगन्ध से भर देता है। राजवंश में परम, श्रेष्ठतम एवं अद्भुत बालक का जन्म हुआ है। पवित्र महारानी इस संसार में सिर्फ इस महान आत्मा को जन्म देने ही आईं थीं एवं इन्होंने यह शुभ कार्य सम्पन्न कर दिया है। अब उनके भौतिक शरीर को इससे अधिक कष्ट उठाना उचित नहीं है। अत: सात दिनों के अन्दर ही उनके भौतिक शरीर का अवसान हो जायेगा।"

संत का कथन सत्य हुआ एवं रानी सातवें दिन आनन्दपूर्वक सोने गईं और फिर कभी न उठीं। उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और उनका जन्म त्रयस्त्रिशंस-लोक में हो गया जहाँ असंख्य देवतागण नित उनकी प्रार्थना करते हैं एवं उस दीप्तिमय मातृत्व की सेवा करते हैं। इस प्रकार महारानी महामाया का 'भव पाश' खुल गया। इधर शिशु का लालन-पालन महारानी की बहन और दूसरी रानी महाप्रजापति करने लगीं। वे संसार का मंगल करने वाले कंठ को अपना पवित्र दूध पिलाकर बड़ा करने लगीं।

शिक्षा

सिद्धार्थ को अन्य बच्चों की तरह बचपन में खिलौनों से बहुत लगाव नहीं था। वे यदा-कदा उन्हें छोड़कर ध्यान लगाकर बैठ जाते थे। राजा-रानी बालक की यह दशा देख कर चिंतित हो जाते थे। आठ वर्ष बीतने पर राजा ने अपने पुत्र को राजधर्म की शिक्षा देने की सोची। महाराजा पिछली भविष्यवाणी को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे तथा पुत्र को करूणानिधान बुद्ध नहीं बनने देना चाह रहे थे। ऐसा सोचकर उन्होंने मंत्रीमंडल से पूछा, "जगत् में सबसे ज्ञानी पुरूष कौन है जो मेरे पुत्र को यथोचित शिक्षा प्रदान कर सकता है ? सभी में तेजस्वी, पराक्रमी पुरुष कौन है ? वस्तुत: कौन सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है ?"

प्रत्युत्तर में सभी ने तत्काल एक स्वर में कहा, "राजन ! विश्वामित्र सबसे ज्ञानी हैं। शास्त्रों के श्रेष्ठतम ज्ञाता, वैज्ञानिक एवं महाधनुर्धर हैं तथा शिक्षा, शारीरिक कला एवं अन्य विधाओं में भी सर्वश्रेष्ठ हैं।" यह सुनकर राजा ने सिद्धार्थ को सभी विधाओं की शिक्षा देने के लिए विश्वामित्र को आमंत्रित किया। राजा का निमंत्रण पा गुरू विश्वामित्र आए और राजा के आदेश को सुना। एक शुभ दिन देखकर राजकुमार को विद्याध्ययन के लिए गुरू-गृह भेजा गया। राजकुमार का गुरू-गृह जाकर अध्ययन करना वैसा ही था जैसे नदी के जल का शिखर की ओर उल्टा

बह चलना। सिद्धार्थ रत्नजटित चंदन की लकड़ी से बनी मूल्यवान स्लेट एवं पेंसिल लेकर ऋषि के सम्मुख प्रस्तुत हो गए। ऋषि ने कहा, "बालक, इस मंत्र को लिखो।" फिर उन्होंने धीरे से गायत्री मंत्र का उच्चारण किया, जिसे सिर्फ उच्च वर्ण के लोग ही उच्चारित कर सकते थे और वे ही इसे सुनने के अधिकारी भी थे।

"ऊँ भूर्भूवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।"

राजकुमार ने विनीत भाव से उत्तर दिया, "आचार्य, अभी लिखता हूँ।" फिर उन्होंने शीघ्र ही स्लेट पर उसे लिख डाला : एक लिपि में नहीं वरन् अनेक लिपियों में : मगधी एवं दक्षिणी, ब्राहम्णी, उग्र, देव, मांगल्य, अंग, दरद, खास्य, मध्याचार, बंग, स्वराष्ट्री, यक्ष, नाग, किन्नर और फिर सागर। इस प्रकार उन्होंने समस्त लिपियों में अक्षर-अक्षर लिख डाले। चित्रलिपि से लेकर आदिम मानवों की लिपि तक, धरती के नीचे विराजने व नागों की पूजा करने वालों की लिपियों में भी गायत्री मंत्र लिख डाला। तब गुरू ने कहा, "इतना पर्याप्त है।"

फिर उन्होंने अंकों की गिनती करने को कहा, "एक से लाख तक की गिनती गिनो।" बालक ने एक, दो, तीन, चार, दस, सौ, हजार, लाख तक गिनने के बाद भी बिना रुके करोड़, अरब, खरब, पद्म एवं महापद्म तक गिनती सुना डाला। सिद्धार्थ ने रात्रि बेला में तारों की गणना करने की विधि भी बता डाली और कैसे समुद्र के जल की बूँदों की गिनती की जाती है, कैसे गंगा के बालू के रेत के कणों को गिना जाता है। अगर दस हजार वर्षो तक लगातार धरती पर वर्षा होती रहे तो उस वर्षा की बूँदों की गिनती की विधि भी बता डाली। गिनती सुनकर गुरुवर चकित हो गए। उन्होंने मन ही मन कहा, "हमारे लाड़ले राजकुमार सचमुच ज्ञानी हैं।" फिर उन्होंने सिद्धार्थ से कहा, "अब आओ तुम्हें जगत के सभी

परिमाण के विषय में बताता हूँ।" यह सुन राजकुमार ने कहा, "सुनें हे आचार्य ! मैं अपनी जानकारी के अनुसार इसे स्पष्ट करता हूँ।" फिर बालक ने जगत् के उन सभी रहस्यों को स्पष्ट करना आरंभ किया जिसे उसके गुरू जानते तक नहीं थे। यह सब सुन और देख महाज्ञानी गुरू विश्वामित्र, बालक सिद्धार्थ के सम्मुख नतमस्तक हो गए और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "तुम शिक्षकों के भी शिक्षक हो। तुम सकल जगत् के गुरुओं के गुरू हो। निश्चय ही मैं नहीं तुम मेरे गुरू हो। मैं तुम्हें साष्टांग प्रणाम करता हूँ। मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ। तुम मेरी शरण में सिर्फ यह दर्शाने आए हो कि तुम्हें सभी कुछ पुस्तकों के बिना ही आता है और उस पर भी तुम गुरू के प्रति अपार श्रद्धाभाव रखते हो। मैं जान गया हूँ कि तुम सकल तत्व के ज्ञाता हो और तुम्हें पहचान भी गया हूँ, क्योंकि तुम सदैव गुरू का सम्मान करते हो।" फिर कर-बद्ध होकर गुरू कहने लगे, "तुम परम ज्ञान-निधान विनीत वचन भी कहते हो। तुम्हारे मुख पर राजतेज विद्यमान है पर तुम्हारा व्यवहार मृदुल है। तुम शूरवीर, तेजस्वी पर सुशील हो एवं तुम्हारा हृदय नवनीत जैसा है।"

यह श्रद्धाभाव राजकुमार ने अपने आश्रम के सभी मित्रों के प्रति भी रखा। अब उनके अन्दर अद्भुत गुण प्रकट होने लगे थे। जब भी मित्रगण आखेट हेतु राजकुमार को संग ले जाते, कोई भी घुड़सवार उनसे आगे नहीं निकल पाता। जब कभी राजभवन के निकट रथ चालन का योग बन जाता, रथ-चालन में उनसे कोई जीत नहीं पाता था। परंतु वे जीत के निकट आते ही ठिठक जाते थे क्योंकि उन्हें अपने पराजित होने वाले मित्रों का दु:ख सहन नहीं होता था। समय के अन्तराल से उनका यह दयाभाव प्रबलतर होता जा रहा था। वे जब आखेट करने जाते तो सामने आए मृग पर भी वाण नहीं चलाते थे और उसे भाग जाने देते थे। दौड़ते-दौड़ते थककर हाँफते घोड़े को देखकर उसे रोक देते थे और उसे पोंछकर, थपथपाकर प्यार करने लगते थे।

देवदत्त और हंस की कथा

इसी बीच एक दिन एक घटना घटित हो गई। राज उपवन में एक अनोखी बात हो गई। वसंत ऋतु में राजकीय उद्यान के ऊपर से एक दिन जंगली हंसों का झुंड गुजर रहा था। चमकदार श्वेत पंखों वाले वे पक्षी परस्पर प्रेम के वशीभूत, हिमालय पर्वत की तरफ अवस्थित अपने घोंसलों की ओर उड़े जा रहे थे। तभी राजकुमार के चचेरे भाई देवदत्त ने तीर से निशाना साधा और सबसे आगे वाले हंस के ऊपर अपने धनुष से वाण छोड़ दिया। वाण हंस के बड़े पंख में गहरा चुभ गया। वह हंस घायल होकर सुनसान उद्यान भूमि पर तड़पता हुआ गिर पड़ा। उसके स्वच्छ चमकदार श्वेत पंख रक्त-रंजित हो चुके थे। ऐसा लग रहा था कि मानो क्षण भर में ही उसके प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। राजकुमार सिद्धार्थ ने दया के वशीभूत उस पक्षी को तुरंत उठाकर पद्मासन की मुद्रा में बैठते हुए उसे अपनी गोद में रख लिया। फिर दयाधार ने उसे सहलाकर, दुलारकर अपने कोमल स्पर्श से उस जंगली प्राणी के भय को दूर किया मानो उसे नूतन प्राण दे रहे हों। पक्षी के दुख से दुखी राजकुमार ने बाएँ हाथ से पक्षी को पकड़ा एवं दाहिने हाथ से तीर को धीरे से बाहर खींच निकाल कर फेंक दिया। फिर अपने हाथ के कोमल स्पर्श से उसकी पीड़ा मिटाने की चेष्टा करने लगे। उनके दयाभाव से उस खग की पीड़ा धीरे-धीरे कम होने लगी। उन कोमल हाथों एवं दया से भीगे दृगों के जल की बूँदों का स्पर्श पा मरणासन्न मराल (हंस) के प्राण लौटते हुए दिखने लगे। उसके घाव पर ठंडक पहुँचाने वाले पत्ते और घाव भरने वाला मधु लगाया एवं उसका उपचार करने लगे। पक्षी की पीड़ा की तीव्रता को समझने के लिए उन्होंने निकाले हुए तीर के नुकीले भाग को अपनी कलाई में चुभोया और उसकी टीस को महसूस कर उनका तन-मन काँप उठा। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। प्रेमपूर्ण वचन बोलते हुए करुणानिधान पुनः पक्षी को सहलाने लगे। तभी पीछे से कोई सेवक आया और कहने लगा, "मेरे राजकुमार

ने एक हंस मार गिराया है। वह यहीं पर आकर कहीं गिरा है। मेरे कुँवर ने मुझे यहाँ उस पक्षी को लेने के लिए भेजा है।" पक्षी को सिद्धार्थ की गोद में देखकर, उसने शीश झुकाकर आग्रह किया, "कृपा कर वह खग मुझे दे दें।" "नहीं !" सिद्धार्थ ने दृढ़तापूर्वक कहा, "अगर पक्षी मर गया होता तो इसे इसके बधिक को देना उचित था लेकिन यह हंस जीवित है। मारने वाला मरे हुए हंस का मालिक हो सकता है लेकिन जीवित हंस पर उसका अधिकार नहीं हो सकता। मेरे चचेरे भाई ने ईश्वरीय गति को बाधित करने का प्रयास किया है। उसने इस पक्षी की जीवन-शक्ति हरने का दु:साहस किया है। अत: उसका इस हंस पर अधिकार नहीं हो सकता।" इतने में राजकुमार देवदत्त भी वहाँ पहुँच गए और करुण कुँवर से कहा, "जंगली वस्तु, जीवित या मृत उसकी होती है जिसने उसका शिकार किया है। बादलों में उड़ता हुआ यह पक्षी किसी का नहीं था परंतु मेरे तीर से गिरा हुआ, अब यह मेरा है। अत: आप इसे मुझे सौंप दें। आपका यह हठ अकारण है और आपका अधिकार निराधार है।"

तब सिद्धार्थ ने हंस के गर्दन को अपने चिकने कपोलों से लगाते हुए गंभीरता से कहा, "ऐसा न कहो ! भाई ! जो तुम कह रहे हो वह उचित नहीं है। मैं अब इसे तुम्हें नहीं दूँगा क्योंकि अब यह पक्षी मेरा है। समस्त वस्तुओं के प्रति दया और प्रेम के अधिकार के कारण यह मेरा है। मुझे इस जगत् के सभी प्राणियों के दु:खों का आभास हो चुका है। मैं अब लोगों को दया की शिक्षा दूँगा। अभिशापित दुख के बाढ़ को कम करूँगा, सिर्फ मनुष्यों का ही नहीं वरन् पूरी सृष्टि की पीड़ा हरूँगा। विकल जीवों में नया जीवन भरूँगा। संसार के बढ़ते हुए भयानक भव-ताप को रोकूँगा। लेकिन राजकुमार अगर आप इस पर भी मेरी बात नहीं मानते हैं और विवाद करते हैं तो हम इस मामले की प्रस्तुति ज्ञानी विद्वद्जनों के सम्मुख करें और उनके निर्णय की प्रतीक्षा करें।"

ऐसा ही किया गया। राजा के पूरे दरबार में इस विषय पर वाद-

विवाद होने लगा। गहन से गहनतर विचार-विमर्श हुआ। कभी लगता था सभी राजकुमार सिद्धार्थ के पक्षधर हैं तो कभी लगा कि अधिकतर देवदत्त के पक्ष में हैं। तभी एक अज्ञात पुजारी ने उठकर कहा, "प्राण एक बहुमूल्य वस्तु है, अत: इसके विषय में विवेक से काम लें। अगर प्राण बचे हुए हैं तो बचाने वाले का जीवित वस्तु पर पूर्ण अधिकार है, उसका अधिकार कदापि नहीं जो प्रहार कर उस प्राणी की हत्या करना चाहता है। बधिक तो नाश कर देना चाहता है पर रखवाला उसकी रक्षा करता है। रक्षक जीवन प्रदान करता है, अत: इस पक्षी को राजकुमार सिद्धार्थ को सौंप दीजिए जिसने इसकी रक्षा की है।" यह निर्णय समग्र सभा को न्यायसंगत प्रतीत हुआ एवं पक्षी राजकुमार सिद्धार्थ को सौंप दिया गया। जब राजा ने उस मुनि को सम्मानित करने के लिए सेवकों को भेजकर बुलवाया तो पता चला कि वे जा चुके थे। जहाँ वे अन्तर्ध्यान हुए थे वहाँ पर उनकी जगह एक छत्र वाले सर्प को सरकते हुए देखा गया। देवतागण यदा-कदा ऐसे ही आया करते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने किशोरवय से ही अपने व्यापक दयामय कार्य का शुभारंभ किया। उपचार पा वह खग स्वस्थ हो उड़ गया और कुछ क्षण में अपने दल में जा मिला। परन्तु कुछ ही पल में वह राजकुमार सिद्धार्थ को पीड़ा का परिचय दे गया।

समय बीता लेकिन समय के अन्तराल से भी सिद्धार्थ दुख के विषय में अधिक नहीं जान सके थे, सिवाय उस पक्षी के घायल होने के दुख के, जो भला-चंगा होने पर अपने झुंड में खुशी-खुशी उड़ जा मिला था।

पिता के साथ नगर दर्शन

महाराज शुद्धोदन राजकुमार को राजकाज की शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। उनके अंदर व्याप्त दया-भाव से वे थोड़ा सशंकित भी हो उठते थे। वे उन्हें राजधर्म की शिक्षा देना चाहते थे एवं उनकी प्रबल इच्छा थी

कि उनका पुत्र एक महान चक्रवर्ती सम्राट बने। राज-काज में उनकी रुचि पैदा करने, राजधर्म की शिक्षा देने, अपने राज्य की विशालता, धन-धान्य एवं विशाल राजकोष को भरने की विधि बताने के लिए तथा अन्य राज-काज से परिचय कराने हेतु राजा ने सुहावने वसन्त ऋतु के मौसम का चयन किया। फिर एक दिन उन्होंने सिद्धार्थ से कहा, "आओ प्यारे पुत्र! आनन्दमयी वसन्त में सुसज्जित इस प्रकृति को देखो ! कैसे कोयल अपनी मीठी आवाज में मधुर गीत गा रही है ! इस मनोरम समय में हमें नगर-द्वार से निकलकर बाहर भ्रमण करना चाहिए।"

सुहावने मौसम में सुसज्जित रथ पर सवार हो महाराज अपने पुत्र को साथ ले धन-धान्य से परिपूर्ण अपने साम्राज्य के भ्रमण हेतु निकल पड़े। राजकुमार को अन्न की फसलों का पकना एवं सुनहली मिट्टी में हरी-ताजी सब्जियों का उगना दिखाने लगे। सुहावने मौसम में पेड़ों पर नये चमकदार हरे-हरे पत्ते लगे हुए थे। हरी-हरी घास एवं खुशबूदार रंग-बिरंगे फूल अपनी छटा बिखेर रहे थे। कुँओं और बागीचों से गुजरते हुए ठंडी हवा के झोंके उनके तन-मन में स्फूर्ति भर रहे थे। बागीचों में मयूर का नाच एवं पक्षियों का कलरव अलग ही समा बाँध रहा था। रंग-बिरंगी तितलियाँ उड़ रही थीं, गिलहरियाँ आपस में दौड़ लगा रही थीं, मैना और तोते झुंड के झुंड उड़ रहे थे। कौवे भैंसों की पीठ पर आराम से सवारी कर रहे थे। चमगादड़ वृत्ताकार रूप में चक्कर लगा रहे थे। चमकते हुए मंदिरों के ऊपर मोर बैठे थे और तेजी से उड़कर वृक्षों पर जा बैठ रहे थे। नीलकंठ पंख फैला दूर-दूर तक उड़ रहे थे। सर्वत्र शांति और सम्पन्नता दृष्टिगत हो रही थी। राजकुमार यह सब देख कर प्रसन्न हो रहे थे। सुदूर गाँवों में विवाहोत्सव में बजने वाले वाद्य यंत्रों की मधुर ध्वनि भी सुनाई पड़ रही थी। ऐसे आनन्ददायी मौसम में महाराज ने सिद्धार्थ को राज-काज के विषय में समझाते हुए राज-कोष भरने का उपाय बतलाया तथा कहा, "जब अग्नि की लपटें मुझे अपनी बाँहों में लपेट लेंगी, तब यह सब राज-

पाट तुम्हारा होगा। अतः इस साम्राज्य को चलाने हेतु राज-काज की विद्या को अच्छी तरह से समझ लो।"

आरम्भ में राजकुमार भी यह सब देखकर प्रसन्न थे। पर जब उन्होंने सूक्ष्मता से इन सभी चीजों को देखना शुरू किया तब पाया कि किस प्रकार प्रकृति ने चतुराई से गुलाब के संग काँटे भी बनाये हैं। किस प्रकार धूप में तपता किसान धूल फाँकता हुआ अपनी मजदूरी के लिए पसीने से लथपथ श्रम करता है। अपने जीवन की रक्षा के लिए उसका यह श्रम तथा चिलचिलाती धूप में काम करने वाले निरीह बैलों पर पड़ते हुए डंडों की चोट देख उनका हृदय द्रवित होने लगा। उन्होंने यह भी देखा कि किस प्रकार छिपकली चींटी को एवं साँप उस छिपकली को और फिर मोर उस साँप को निगल रहा है। किस प्रकार बाज मछली का और बुलबुल सुन्दर तितलियों का शिकार कर रही है। मछली छोटे जीवों को खा रही है और नर-नारी मछली को खा जा रहे हैं। एक बधिक दूसरे बधिक का वध कर अपनी क्षुधा शांत कर रहा है। एक मरता है पर उसके कारण दूसरा जीवन पा रहा है। प्रत्येक स्थान पर उन्हें एक दूसरे की हत्या को आतुर जीवगण दिखे। जीवन जीवित था, मृत्यु के कारण। राजकुमार ने इन मनोरंजक सुखदायी दृश्यों के पीछे छिपे बर्बर, निर्दयी षड़यंत्र को देख लिया। केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि कीट, पक्षी आदि सभी भ्रमित हैं। किसान भूखे दुर्बल बैल को नाथ कर घुमाता है, उसके कंधे छिल जाते हैं पर उसे इसका ध्यान ही नहीं रहता। जीने की चाह की इस धधकती ज्वाला में सभी नित्य जल रहे हैं एवं परस्पर लड़ मर रहे हैं।

ध्यान का प्रथम-पाठ

यह सब देख राजकुमार सिद्धार्थ का हृदय व्यथित हो उठा। उनके नेत्र अश्रु से भर गये और उन्होंने आह भरते हुए पूछा, "क्या यही जीवन कहलाता है ? क्या यही वह सुखी संसार है, जिसे आप मुझे दिखाने यहाँ

लाए थे ? कैसे मानूँ कि यह संसार सुहावना है, सुन्दर है ? बाहर से भले ही यहाँ मुसकान दिखाई दे रही हो, पर यहाँ तो अन्दर दुख ही दुख है। क्या मुझे सिर्फ यह दिखाने लाया गया था कि यह सारा संसार कैसे दुःख का सृजन करने में अथक प्रयत्नशील है ? कैसे किसान की रोटी के साथ उसके पसीने से निकला हुआ नमक भी मिला हुआ है ? कितना कठिन है - किसान और बैलों द्वारा की गई यह सेवा ? धरा पर सबल और निर्बल का समर कितना प्रचंड है ! जल-थल-नभ सर्वत्र युद्ध चल रहा है और कहीं, किसी के भी बचने की आशा नहीं। वह एकात्म भाव कहाँ चला गया जो सभी में बसता था ?"

तब सिद्धार्थ तटस्थ होकर एकाग्र भाव से जगत् को देखने लगे। यह संसार कैसा है ? क्या जीवन का यही लेखा-जोखा है ? यह सोचकर दया के सागर सिद्धार्थ एक विशाल जामुन के वृक्ष के नीचे चले गए और पद्मासन की मुद्रा में बैठ गए। वे संसार की इस भयंकर व्याधि पर चिंतन करने लगे कि इस भयावह बीमारी का मूल कहाँ है और फिर इसका उपचार क्या है ? उनमें संसार के समस्त जीवों के प्रति असीमित प्रेम और करुणा भाव उमड़ने लगा तथा दुख निवारण के प्रति ध्यान केन्द्रित हो उठा। कुछ समय पश्चात् उनके अंदर इतनी अधिक करूणा व्याप्त हो गई कि वे सुध-बुध खोकर समाधिवस्था में चले गए। वे ऐन्द्रिकता एवं सांसारिकता से ऊपर उठ ध्यानमग्न हो गए। इस प्रकार ध्यानस्थ होकर उन्होंने ध्यान-मार्ग का पहला पाठ पूरा कर लिया।

उसी समय आकाश मार्ग से पाँच देवतागण जा रहे थे। जामुन के वृक्ष के ऊपर से गुजरते हुए उन देवतागणों के पंख लड़खड़ाने लगे। चकित होकर वे आपस में चर्चा करने लगे कि कौन सी अलौकिक शक्ति हमें मार्ग से च्युत कर धरा पर खींच रही है ? तभी उनकी दृष्टि तरू तले बैठे, ध्यान में निमग्न सिद्धार्थ पर गई जिनका लालिमायुक्त ललाट ज्योतिर्मय हो रहा था और जो लोक कल्याण के लिए ध्यान में निमग्न थे। तभी देवतागणों ने आकाशवाणी सुनी, "ऋषिवर ! ये वो दयानिधान हैं जो

संसार की मदद करेंगे। उतरिये और वंदना कीजिए।"

ऋषिगण धरती पर उतर आए और सिद्धार्थ के सम्मुख आकर स्तुति गान गाने लगे। देवतागण भी जान गए कि इस धरा पर व्याप्त अज्ञानता के अंधकार की समाप्ति के लिए ज्ञान के सूर्य का उदय हो चुका है। ऐसा आभास होने लगा कि शीघ्र ही लोक-कल्याण का सुमन प्रस्फुटित होगा। राजकुमार सिद्धार्थ को श्रद्धापूर्वक नमन कर देवगण देवलोक में यह सुसमाचार देने हेतु प्रस्थान कर गए।

उसी समय महाराजा का एक दूत वहाँ आया। तीसरे प्रहर की समाप्ति हो रही थी, सूर्य देव भी अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे परंतु सिद्धार्थ का ध्यान भंग नहीं हुआ था और न जामुन के वृक्ष की छाया ही तनिक मात्र खिसकी थी। छाया भी सिद्धार्थ के समान स्थिर हो गई थी ताकि उनके सिर पर तृणमात्र भी धूप न आ सके। वह दूत इस चमत्कार को देखकर ठगा सा खड़ा रह गया। तभी उसने वृक्ष से निकलती हुई यह आवाज सुनी, "आप निश्चिन्त रहें ! जब तक इनकी ध्यानावस्था समाप्त नहीं होती है, तब तक मेरी छाया इन पर विद्यमान रहेगी।" राजा का दूत यह दृश्य देखकर स्तब्ध रह गया।

काफी विलंब होने पर राजा भी वहाँ आ गये एवं राजकुमार को गहन ध्यान में डूबा हुआ देखकर चिंतित हो उठे। सूर्य तेजी से पश्चिम की पहाड़ी की ओर जा रहा था एवं उसकी छाया खिसक रही थी पर जम्बू वृक्ष की छाया सिद्धार्थ को छाया देते हुए एक तरफ ही रुकी रही एवं उनके पावन शरीर को तिरछी हो रही किरणों से बचा रही थी। महाराज भी यह सब देखकर स्तब्ध हो गये। वे समझ गये कि जिसकी रक्षा प्रकृति कर रही हो वह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता। तभी गुलाब के फूलों के बागीचे के पीछे से आवाज आई, "आप निश्चिन्त रहें महाराज ! जब तक राजकुमार के ह्रदय से छाया (दु:ख का सही-सही कारण व विश्लेषण) निकल नहीं जाती तब तक हमारी छाया इन पर बनी रहेगी।"

द्वितीय सर्ग
राजा की चिंता

राजकुमार सिद्धार्थ के वयस्क हो जाने पर राजा अपने पुत्र के बारे में अनेक सपने देखने लगे। पुत्र का मन प्रसन्न रखने के लिए उनके मन में विशाल, आकर्षक एवं मनमोहक राजप्रासाद बनाने हेतु कामनाएं उदीप्यमान होने लगीं।

उनकी कल्पना के अनुसार भवन में नववयस्क नृत्यांगनाएँ अनवरत नृत्य करेंगी जिससे राजकुमार का चित्त सदा प्रसन्न रहेगा, सांसारिक चीजों की ओर लिप्त रहेगा और मन में कभी वैराग्य का भाव नहीं आएगा। इन्हीं सुखद स्वप्निल कामनाओं के साथ राजा ने अपने मंत्रियों को तत्क्षण स्वर्ण आभा से युक्त विशाल एवं मनोरम भवन बनाने हेतु आदेश दिया, "महल ऐसे रमणीय, मनोहर तथा हृदय को मुग्ध करने वाले हों जैसे मन को पुलकित करने वाली ठंडी हवाएँ। महल को देखने की अभिलाषा निरंतर बनी रहे, वस्तुत: लगातार देखते रहने की इच्छा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहे। मंत्रीवर ! इन भवनों में कलाकारों की कलाओं से लताओं, झरनों एवं कमल के फूलों को इतना सुन्दर बनाया जाए कि इन्हें देखकर विश्वकर्मा भी व्यग्र हो उठें। भवन इतने अलौकिक एवं विशाल हों कि ऐसा लगे मानो ईश्वर ने इन्हें स्वर्ग से धरती पर उतारा हो। राजकुमार की आत्मा इन भवनों से पूरी तरह बँध जाए। भवन द्वार की कला अनुपम, अनूठी एवं अद्वितीय हो। सिद्धार्थ केवल मेरे पुत्र ही नहीं हैं, बल्कि पुरुषोत्तम हैं। ये अमृत के कोश की तरह सुंदर एवं निश्छल हैं।" राजा ने आगे मंत्री परिषद से कहा, "तीनों लोकों की सारी सुविधाएँ इनके पास उपलब्ध रहें और ये जब भी निद्रा से जागें इनको चारों तरफ सुख एवं समृद्धि ही दिखलाई पड़े।" राजा की यही कामना थी कि दु:ख, जर्जरता एवं निर्बलता राजकुमार के आस-पास कहीं भी फटकने न पाए। "मंत्रीगण भी यही कामना करें कि राजकुमार को कभी भी दुख का सामना न करना

पड़े। उन्हें सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त हों तथा उनका भूत एवं भविष्य, रात एवं दिन सभी मंगलमय हों।"

राजा के आदेशानुसार राजकुमार को प्रसन्न रखने के लिए मंत्रियों की सलाह से तीन विशाल एवं मनोरम भवनों का निर्माण किया गया। पहला भवन देवदार का वर्गाकार आकृति में बनाया गया जो शीतकाल में भी गर्म रहे एवं जिसमें निरंतर सुहावनी गर्म हवाएँ बहती रहें। दूसरा भवन सफेद संगमरमर का बनाया गया जिसमें गर्मी में भी शीतकाल का अनुभव हो। तीसरा भवन ईंटों से निर्मित किया गया जो पावस ऋतु में भी चंपक पुष्प की तरह आकर्षक एवं मनोरम लगे।

इन भवनों के नाम क्रमशः शुभम्, रम्य एवं सुरम्य रखे गए। ये भवन इतने सुंदर एवं मनोरम थे कि इन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो सभी सुख-साधनों से परिपूर्ण नीड़ धरा पर उतर आए हों। इन भवनों के चतुर्दिक उद्यान ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे माँ के आँचल में सुख का अनुभव करता उसका शिशु ! तीनों भवन पूरे राज्य में अद्वितीय एवं अनुपम थे। ऐसे सुखकर एवं आनंददायी भवन शायद देवताओं के भाग्य में भी न हो। सभी प्रकार के मनोरंजन एवं सुविधाओं से परिपूर्ण इन भवनों में पशु-पक्षी भी बिना किसी बाधा के अपनी-अपनी क्रीड़ाओं में रत हो गए। इन्हें देखकर राजा मन ही मन अत्यंत हर्षित थे। सभी नर-नारी प्रसन्न एवं विमुग्ध थे। प्रकृति की छटा भी निराली एवं अद्वितीय थी। राजा-रानी राजकुमार पर मोहित हो जाते थे। परिवार के सभी सदस्य भी हर्षोल्लास में निमग्न होकर आनंद एवं खुशियाँ मना रहे थे। परन्तु कभी-कभी राजा को चिन्ता रूपी ज्वाला व्यग्र कर देती थी। वे सोचने लगते कि कहीं ज्योतिषियों एवं भविष्यवक्ताओं की कही बातें सत्य न हो जाएं ? उनको डर लगता था कि कहीं मानो भास्कर के सामने बादलों का समूह अंधकार बनकर छा न जाए। उनको भय सताता था कि इस होनी-अनहोनी में उनका पुत्र कहीं घर छोड़कर ही न चला जाए और उनका भविष्य ही न

अंधकारमय हो जाए तथा उनकी खुशियों पर वज्रपात न हो जाए। इन चिंताओं से आक्रान्त एवं भयभीत हो नरेश इतने अधिक व्यग्र हो गये कि उन्हें लगने लगा कि कहीं राजकुमार को खोकर उनकी सारी स्वप्निल कल्पनाएँ छिन्न-भिन्न न हो जायें। अत: उन्होंने अपने कुशल एवं सर्वश्रेष्ठ सचिवगणों को बुलाकर उनसे मंत्रणा की और उनसे कहा कि ऋषियों के कथन एवं भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणियाँ उनके लिए निरंतर चिंता का विषय थीं।"मुझे समझ में नहीं आता कि मेरा पुत्र विश्व विजयी होकर मेरे सपने, मेरी अभिलाषा पूरी करेगा या दैनिक दु:ख-दर्द एवं दीनता को देखकर संन्यास धारण कर लेगा ? मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि राजकुँवर चक्रवर्ती सम्राट बनें एवं विश्व विजयी बनकर जगत् विजेता कहलायें। शत्रु इनके सामने सिर झुकाकर खड़े हों, थर-थर काँपें तथा भय से इनकी पूजा करें। इन्हें सामने देखकर काल भी घबड़ा जाए।" राजा ने फिर कहा, "मंत्री महोदय ! कुछ ऐसा करना चाहिए कि इनके मन में कभी स्वप्न में भी संन्यास लेने की भावना न जागे तथा भूल से भी दीन-दुखी प्राणी इनके सामने न आयें। नगर निवासी हमेशा सज-सँवरकर ही इनके सामने आयें। चारों तरफ दृश्य मनोहारी हो जिसे देखकर मन आनंद से भर जाये। राजकुँवर का मन सदैव भोग-विलास में लिप्त रहे इसके लिए चित्त को आकर्षित कर देने वाली क्रियाएँ निरन्तर चलती रहें। इस धरा को निरन्तर जीतने की इच्छा उनके मन में बसे तथा विश्वविजयी सम्राट बनने की बात को वे सत्य के रूप में स्वीकार करें। मेरे मन की इस प्रबल इच्छा को साकार करने के लिए राजकुमार प्रतिक्षण चिंतन-मनन करते रहें। सारा विश्व उन्हें सम्राट कहकर संबोधित करे। दिग्पाल हमेशा उनका गुण-गान करते रहें तथा उनका हर पल यशस्वी हो। यदि उनके मन में कहीं गलती से वैराग्य जग गया तो उनके लिए जीवन और जीने का महत्व ही बदल जाएगा एवं पता नहीं उसका परिणाम क्या होगा ? संन्यास की राह काँटों से भरी, बड़ी ही कठोर एवं निर्दयी होती है तथा उसमें दु:ख तथा परेशानी के सिवा और कुछ नहीं मिलता है। उस विपत्ति काल में कौन किसकी

सहायता करेगा ? इस मार्ग में सफलता प्राप्त करने में पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है, क्योंकि इस धरातल पर शांति सहज रूप में नहीं मिलती है। ऐसी कल्पनाएँ हमें हमेशा भयभीत करती हैं। सचिवगण सदा इस प्रयास में लगे रहें कि इस धरा पर कभी भी ऐसा न हो कि भूल से भी राजकुमार संन्यास की ओर प्रवृत्त हों। यदि पता चले कि राजकुमार संन्यास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं तो इसकी सूचना मुझे तुरंत दी जाए।"

सभी विद्वान मंत्रीगण ने आपस में मंत्रणा की और फिर राजा के सम्मुख विनम्रतापूर्वक कहा, "राजन ! प्रेम एक ऐसा रोग है जो राजकुँवर को संन्यास पथ पर जाने से रोक सकता है। राजकुँवर का विवाह एक मन-मोहिनी कन्या से कर दिया जाए तो वह उनको अपने सम्मोहन पाश में जकड़ लेगी। उसके रूप-लावण्य के सौन्दर्यजाल में फँसकर राजकुँवर कभी भी दुख का अनुभव नहीं करेंगे। वे अभी रूप-लावण्य के आनन्द, आँखों की चंचलता और होठों के अमृत रस से अनभिज्ञ हैं। उनकी जीवन संगिनी अत्यंत सुन्दर एवं चन्द्रमुखी तथा मन मोहने वाली हो मानो वह ब्रह्मा की अद्वितीय कलाकृति हो। रूप-सौन्दर्य का साहचर्य मदमस्त करने वाला होता है। भोग में लिप्त व्यक्ति के लिए संसार सुंदर एवं रुचिकर हो जाता है। हे राजन ! आप इस अमोघ मंत्र को अपनायें और पुन: देखें कि वैराग्य की भावना उन्हें कैसे जकड़ती है ? लोहे के कपाट जिसे नहीं रोक पाते हैं वह व्यक्ति सुंदरी के केश जाल में ऐसा उलझता है कि उसके बंधन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है और न कहीं जा सकता है। मानव स्वभाव से ही रूप सौंदर्य से सुख पाता है।"

राजा को मंत्रियों की यह युक्ति सही और अर्थपूर्ण लगी एवं मन में राजकुँवर का विवाह कराने का निश्चय कर लिया। उन्होंने मंत्रियों को आदेश दिया कि एक ऐसी योग्य राजकुमारी खोजें जो अत्यंत कमनीय, विद्युत की तरह तेज, मृगनयनी एवं सुमधुर हो। पर राजा ने यह भी चिंता व्यक्त की कि यदि राजकुमार को रूप वाटिका से मन मोहिनी नवयुवती

को चुनने के लिए कहा जाये तो वे मुस्करा कर इस बात को टाल जायेंगे एवं हमारी यह युक्ति धरी की धरी रह जाएगी । तब दूसरे सचिव ने राजा को मंत्रणा दी कि कोई न कोई सुंदरी राजकुमार को अपने रूप-जाल में अवश्य फँसा लेगी क्योंकि मृग तभी तक कुँलाचे भरता है जब तक वह वाण से घायल नहीं हो जाता। ऊषा जैसी कोई रूपवती राजकुमार को अवश्य भा जाएगी एवं उनके हृदय में समाकर निश्चय ही प्रेम और आसक्ति पैदा कर देगी।" मंत्रियों के सुझाव पर राजा ने उन्हें सात दिनों के अंदर 'अशोक उत्सव' आयोजित करने का आदेश दिया।

"इस उत्सव में राज्य की सौम्य, सुंदर, चित्ताकर्षक सोलह वय वाली सभी कुमारियों-राजकुमारियों को आमंत्रित किया जाए। राजकुँवर प्रसन्न होकर सभी को पुरस्कार वितरित करें। जिस प्रकार सूर्य बर्फ के पहाड़ को पिघलाकर सभी नदियों को जल से परिपूर्ण कर देता है उसी प्रकार जब राजकुमार अपने नेत्रों से इन राजकुमारियों के रूप-लावण्य को देखेंगे तो उनके हृदय को निश्चय ही कोई अच्छी लगेगी। प्रबुद्ध नर-नारी छुपकर प्रत्येक राजकुमारी को उपहार लेकर आना-जाना देखते रहें। राजकुमार किस राजकुमारी पर अपनी दृष्टि गड़ाते हैं इसे सावधानी से देखें- किस राजकुमारी की आँखों से इनकी आँखें मिलती हैं और आँख रूपी भँवरे मदमस्त होते हैं ? प्रेमी के नेत्र ही अपनी प्रेयसी का चुनाव कर लेते हैं जिस प्रकार भ्रमर के संगीत को कमल सदृश बड़े कर्ण ही सुन सकते हैं।"

सभी मंत्रियों को राजा की यह युक्ति अच्छी लगी। आनंदोत्सव के लिए ढिंढोरा पिटवाया गया एवं राज की सभी सौम्य, सुंदर, सोलह वय वाली कुमारियों को राजमहल में एकत्र होने के लिए कहा गया। "राजकुमार प्रत्येक राजकुमारी को अनुपम, मूल्यवान एवं अत्यन्त चित्ताकर्षक उपहार देंगे। इनमें जो अत्यंत सौन्दर्यशालिनी होगी उसे सर्वश्रेष्ठ उपहार मिलेगा।"

प्रेम

अशोक उत्सव के दिन राजभवन में सप्तरंगी सुन्दरता छायी हुई थी। अद्वितीय रूप सौन्दर्य से युक्त नवयुवतियाँ ह्रदय को सम्मोहित कर जाती थीं। सुनहरी एवं गौरवर्ण वाली सुसज्जित कन्याएं मन को हर्षित कर रही थीं। राजमहल में पूरे संसार की सुन्दरता समा गई थी एवं उसके चहल-पहल से मन हर्षित हो रहा था। कहीं मदमस्त करने वाले नेत्रों से मधु टपक रहा था तो कहीं होठों का सौन्दर्य सोम रस की तरह प्रभाव डाल रहा था। करधनियों की सुमधुर आवाज एवं गायन ह्रदय को लुभा रही थी। वहाँ पर चौसठ कलाओं तथा सोलहों श्रृंगार से परिपूर्ण समावेश था। प्रत्येक सुन्दरी दृष्टि को आकर्षित कर रही थी एवं प्रत्येक सुन्दरता की पराकाष्ठा की प्रतिमूर्ति थी मानो नीले कक्ष में हजारों फूल खिले हों। प्रत्येक ह्रदय में उत्सुकता समाई हुई थी। वे राजकुमार को एक टक देखना चाहती थीं।

एक एक कर प्रत्येक सुन्दरी सिंहासन के सम्मुख आई एवं राजकुमार को देखकर सकुचा एवं सहम गई। राजकुमार का तेज एवं दिव्यमान सौन्दर्य विष्णु के समान लग रहा था। प्रत्येक राजकुमारी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्यचकित थी एवं उनकी छवि अपनी आँखों में बसा लेना चाह रही थी। प्रत्येक सुन्दरी अपना उपहार लेकर आगे बढ़ जाती थी तथा उसके स्थान पर दूसरी सुन्दर कन्या उनके समक्ष उपस्थित हो जाती थी।

इसी क्रम में वह अनुपम क्षण भी आया जिसके लिए सभी प्रतीक्षारत थे। ईश्वर की माया का श्रेष्ठतम सौन्दर्य राजकुमार के समक्ष उपस्थित था। कुँवर की दृष्टि जब यशोधरा पर पड़ी तो वे मुग्ध होकर अपलक निहारने लगे एवं उनका विशाल ह्रदय अमृत रस से तृप्त हो गया। यशोधरा सुन्दरता की पराकाष्ठा थी। मुग्ध कुँवर की दृष्टि हटाने पर भी नहीं हटी क्योंकि उनके नयन अतृप्त रह गये थे। जैसे वर्षा ऋतु में बिजली

एवं बादल उलझे रहते हैं, उसी प्रकार कुँवर एवं यशोधरा के नयन आपस में उलझ गए। थोड़ा समय बीतने पर सहमकर यशोधरा ने पूछा कि वह रुके या जाये, "मेरे लिए कोई उपहार बचा है, अगर हाँ तो वह मुझे मिले, अन्यथा मैं जाऊँ।" स्वीकृति में कुँवर ने मधुरता से कहा, "तुम्हारे योग्य कोई उपहार नहीं बचा है।" ऐसा कहते हुए कुँवर ने तुरंत अपने गले का हार उतारकर यशोधरा के गले में डाल उसे सुशोभित किया। कुँवर के हाथ से हार पहनने पर वह ऐसे सकुचाई मानो वह लज्जा की प्रतिमूर्ति हो। वह कुँवर की आँखों में समा गई तथा कुँवर से कंठहार पा बदले में वह उन्हें अपना हृदय हार दे बैठी। आँखें चार हुईं, अधर मुस्कराए, दो हृदय एक हो गये।

व्याध-पुत्र की कथा

वर्षों पश्चात् कुँवर ने जब बुद्धत्व प्राप्त कर लिया तो एक दिन उनके श्रेष्ठ शिष्यों ने उनसे सरलता से पूछ दिया, "आप जैसे वीतरागी के हृदय में यशोधरा के प्रति इतना अनुराग कैसे जगा ?" तब बुद्ध ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया कि वे दोनों एक दूसरे से अपरिचित नहीं थे, बल्कि उनका संबंध कई जन्मों से था और वे एक दूसरे से आबद्ध थे। फिर उन्होंने कई जन्मों पूर्व की कथा सुनाई : "उस जन्म में मैं एक व्याध पुत्र था और जंगलों में विचरण करता था। एक दिन नन्दा देवी शिखर के बगल में यमुना के तट पर मैं वन कन्याओं के संग खेल रहा था। शुद्ध-सात्विक मन से हमारा खेल चल रहा था। उस खेल का पंच मैं बना एवं सभी कन्याओं में मुझे पहले छू लेंने की होड़ लगी। उन देवदार वृक्षों के तले रूपवती कन्याएँ हिरणी की तरह दौड़ीं। मैं उनको पुष्पों का हार देकर कृतज्ञ कर रहा था। मैंने वन जूही के फूलों से किसी का मस्तक सजाया तो किसी के बालों में नीलकंठ का पंख लगाया। किसी के गले में गेंदे की माला डाली तो किसी के गले में देवदार के पुष्प की माला। यशोधरा सबसे पीछे दौड़ी पर सबसे आगे आई और मुझे देखकर लज्जा से लाल

हो गई। फिर हम दोनों बहुत दिनों तक सुखपूर्वक साथ रहे। प्रेम के बंधन में बँधकर साथ-साथ जीये और फिर साथ-साथ मरे। जिस प्रकार धरती में बीज सुसुप्तावस्था में पड़ा रहता है और वर्षा का जल पाकर अंकुरित हो जाता है उसी प्रकार पूर्व जन्मों के रागद्वेष, सुख-दु:ख को समेटे बीज समान पड़े रहते हैं। उचित अवसर पाने पर वे पुन: प्रस्फुटित हो जाते हैं। क्रमानुसार उनकी शाखाओं पर मीठे, कड़वे फल लगते हैं। मैं वही शिकारी बालक हूँ और यशोधरा वही वन कन्या है। इस प्रकार जन्म-मरण का चक्र चलता जाता है जिसमें अभिशाप एवं वरदान दोनों ही मिलते रहते हैं।"

मंत्रियों ने सारा घटनाक्रम गुप्त रूप से देखा और दौड़कर राजा के पास पहुँचे। उत्सव में राजकुँवर पर दृष्टि रखने वाले उन मंत्रियों ने राजा को अक्षरश: वृत्तांत सुनाया कि किस प्रकार जब तक सुप्रबुद्ध की कन्या यशोधरा उनके सामने नहीं आई थी, राजकुमार निर्लिप्त बैठे थे परंतु जैसे ही वह उनके सम्मुख आई, दोनों की दृष्टि मिलते ही प्रेम का सागर उमड़ पड़ा। उन्होंने यह भी बताया कि कैसे राजकुँवर ने अपने गले का हार यशोधरा को पहनाया और फिर कैसे दोनों प्रेम सरिता में बह गए।

मंत्रियों ने राजा को शुभ संदेश देकर अपने को कृत-कृत किया एवं राजा से मनोवांछित उपहार प्राप्त किया। वृत्तांत सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की, "हे भगवन् ! मेरी धरोहर बच गई जिसे भविष्य के हाथों लुटने का भय था।"

विवाह का प्रस्ताव

राजा हर्षित होकर बोले कि अशोक उत्सव की सहायता से उन्होंने कुँवर को बचा लिया और यही उनका उद्देश्य भी था। फिर उन्होंने दूत से कहा कि वह राजा सुप्रबुद्ध के पास जाए और उनसे बातें करके राजकुमार

के लिए उनकी पुत्री यशोधरा का हाथ माँगे।

उत्तर में सुप्रबुद्ध ने दूत से कहा, "शाक्य वंश की परंपरा के अनुसार उनकी कन्या को श्रेष्ठतम पुरुष ही प्राप्त कर सकता है। उसे शस्त्र कला में अपने हाथों का पराक्रम दिखाकर कन्या को प्राप्त करना होगा। शाक्य वंशी राजा इस परंपरा के विपरीत नहीं जा सकते। सैकड़ों राजकुमार यशोधरा को पाना चाहते हैं लेकिन जो सर्वोत्तम होगा उससे ही अपनी कन्या का विवाह करूँगा। यदि सिद्धार्थ अस्त्र-शस्त्र चालन एवं घुड़चालन में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो जाएंगे तो उनसे अच्छा वर कहाँ मिलेगा लेकिन उनकी सुस्ती और विरक्ति को देखकर यह कैसे आशा की जा सकती है कि सब कुछ मनोवांछित ही होगा ?"

इन बातों को सुनकर राजा चिंतित और उदास हो गए। सुप्रबुद्ध की शर्तों ने राजा की चिंताग्नि के हवन में घृत की भांति कार्य किया। उधर राजकुमार ने भी अपने पिता से यशोधरा से विवाह की तीव्र इच्छा व्यक्त कर दी और उदास रहने लगे। दु:ख से कातर राजा सोचने लगे कि क्या राजकुमार का यशोधरा को प्राप्त करना संभव है क्योंकि देवदत्त जैसे धनुर्धर, अर्जुन जैसे घुड़सवार को उनके क्षेत्रों में हराना असंभव है। नन्द को तलवार चलाने की कला में परास्त करना असंभव है। यह सोच-सोचकर राजा अत्यंत उदास हो गए। पिता की उदासी का कारण जानकार राजकुँवर हँसते हुए उनसे बोले कि वे भी इन कलाओं को सीखे हुए हैं। "आप चिंतित न हों। जो मुझसे भिड़ना चाहे, वह भिड़े। पहले से ही मैं अपनी पराजय मानकर राजकुमारी को हाथ से नहीं जाने दूँगा। निश्चय ही उस पर किसी अन्य का अधिकार नहीं होने दूँगा।"

राजकुमार की आज्ञानुसार रणकौशल में चातुर्य दिखाने की चुनौती की घोषणा हुई। घोषित किया गया कि यशोधरा को पाने के लिए जो चाहे

राजकुमार सिद्धार्थ से प्रतिस्पर्द्धा लगाए और उसे जीतकर उससे विवाह कर ले।

शस्त्र परीक्षा

विशाल रणभूमि दूर-दूर तक फैली हुई थी। सभी शाक्यवंशी कुमार रणकौशल के मद से भरे भरपूर चुनौती देने के उद्देश्य से पहुँच गए। सोलहों श्रृंगार से सुसज्जित राजकुमारी यशोधरा को सखियाँ मंगल गीत गाती हुई ले आईं। राजकुमारी को ब्याहने की अभिलाषा से राजवंश के देवदत्त भी वहाँ शीघ्र पहुँच गए। परम कुलीन वंश के नन्द और अर्जुन दोनों ही आए। सभी राजकुमार युद्धकला में परम कुशल एवं शीर्ष पर थे। अपने द्रुतमान अश्व कंटक पर सवार होकर सिद्धार्थ भी अति उमंग के साथ वहाँ पधारे। अनजानी भीड़ देखकर उनका घोड़ा हिनहिनाने लगा। फिर उपस्थित स्त्रियाँ मधुर स्वर में मंगल-गान गाने लगीं। सौंदर्यमयी यशोधरा की ओर देखकर राजकुमार क्षण भर रुके एवं विहँस कर अश्व का रेशमी लगाम खींच डाला। कंटक से कूदकर सभी की ओर देखते हुए दोनों भुजायें उठाकर कहा, "ये सभी प्रतियोगी जो श्रेष्ठ रत्न समान राजकुमारी को ब्याहने आए हैं उनमें से सर्वश्रेष्ठ भी इनके योग्य नहीं है। राजकुमारी के साथ पावन-परिणय की अभिलाषा कर लोगों ने दुस्साहस का परिचय दिया है। अत: सभी प्रतिपक्षीगण आकर अपना पराक्रम सिद्ध करें।" तब नन्द ने धनुष परीक्षा के लिए ललकारते हुए अपने लक्ष्य को छ: गो दूर रखवा दिया। अर्जुन ने भी लक्ष्य को छ: गो एवं देवदत्त ने आठ गो दूर रखवा दिया। लेकिन राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने लक्ष्य को दस गो दूर रखने का आदेश दिया। सिद्धार्थ द्वारा अति दूर रखा लक्ष्य दर्शकों को कौड़ी के आकार का दिखाई दे रहा था। शर संभाल कर नन्द ने लक्ष्य को भेद दिया और वाण मारकर अर्जुन भी लक्ष्य भेदने में सफल हो गए। देवदत्त ने भी लक्ष्य को सटीक भेद दिया जिसे देखकर दर्शकगण आश्चर्यचकित

हो गए। यशोधरा चाहती थी कि उसके प्राण देवता राजकुमार अपना लक्ष्य भेदने में असफल न हों। पर उसे विश्वास नहीं था कि राजकुमार सफल होंगे। अत: वह अन्यमनस्क होकर आँखों को आँचल से ढँककर निराश भाव से सारा दृश्य देख रही थी। राजकुमार ने रखे हुए धनुष को उठा लिया जिसकी ताँत चाँदी के दृढ़बद्ध तारों से कसी थी। उस धनुष की डोरी मात्र वही वीर चार अंगुल तक टान सकता था जो अति बलशाली, गंभीर बुद्धि वाला एवं धीर हो। धनुष की डोर चढ़ाकर और फिर धनुष के दोनों छोरों को सटाकर कुँवर ने उसे तोड़ दिया। धनुष तोड़ने पर राजकुमार ने पूछा कि क्या उन्हें यह धनुष खेलने के लिए दिया गया है ? ऐसा कहकर उन्होंने उसे दूर फेंक दिया। पुन: उन्होंने कहा कि यह धनुष प्रेम की योग्यता परखने के लिए उपयुक्त नहीं है। क्या प्रणेता राजकुमार को योग्य धनुष नहीं मिलेगा ? यह सुन एक दर्शक ने उत्तर दिया कि राज मंदिर में हनु धनुष बहुत दिनों से पड़ा है जिसकी प्रत्यंचा अभी तक कोई भी नहीं चढ़ा सका है एवं संधान करने की कोशिश करते-करते हर वीर थक चुका है। राजकुँवर विहँस कर बोले कि उस धनुष को तुरंत लाया जाए। लोग प्राचीन मंदिर से उस धनुष को उठाकर ले आए। धनुष को अपने घुटनों पर रख, चाप चढ़ाकर राजकुँवर ने उसकी मजबूती को भांप लिया। फिर वे अपनापन के साथ मधुर वचन बोले, "जो कोई भी वीर लक्ष्य भेदना चाहता है वह इस धनुष से भेद दे।" लेकिन वहाँ पर धनुष को झुकाने वाला भी कोई नहीं था। तब राजकुमार ने झुककर उस धनुष को आसानी से उठा लिया एवं प्रत्यंचा चढ़ा दी। पुन: उन्होंने डोरी खींचकर धनुष का टंकार किया। हवा थर्रा गई एवं टंकार की ध्वनि नगर से बहुत दूर कोसों तक सुनाई दी। निर्बलों ने पूछा कि यह किसकी आवाज है। लगता है सिंहनु के धनुष की टंकार से ही शांति भंग हुई है। दर्शकों के सामने राजकुँवर ने संधान साधकर लक्ष्य भेदने के लिए तीर चलाया। तीर लक्ष्य भेदने हेतु पवन को चीरता हुआ चला और लक्ष्य को भेद गया। तभी देवदत्त ने तलवार चलाने की प्रतियोगिता शुरू की एवं

दस अंगुल मोटा ताल का विशाल पेड़ काट गिराया। अर्जुन ने बारह अंगुल एवं नन्द ने पंद्रह अंगुल मोटा पेड़ गिरा दिया। वहीं पर दो ताल के वृक्ष खड़े थे। उनको राजकुँवर ने एक ही वार में काट दिया। लेकिन दोनों पेड़ बिना सहारे के कहार की तरह जस के तस खड़े रहे। तब नन्द ने हर्षित होकर आवाज लगाई, "राजकुमार की धार बहक गई है।" इस हार की बात सुनकर यशोधरा काँप गई। पवन उस क्षण को एवं राजकुमार को चकित होकर देख रहा था। उसने तुरंत हवा को दक्षिण दिशा से बहाया। तत्काल दोनों हरे-भरे सुंदर ताल धरती पर भरभराते हुए गिर गए।

फिर चारों ने घोड़ों को दौड़ाया और मैदान के तीन चक्कर लगाए। इस दौड़ में कंटक सबसे आगे निकल गया एवं अन्य घोड़ों के मुख से झाग निकलने लगा। तब नन्द ने चिल्लाकर कहा कि अगर उसे भी कंटक जैसा अश्व मिले तो वह निश्चय ही विजयी होकर दिखलाएगा। यदि पालतू घोड़े की जगह जंगली घोड़ा लाया जाता है तो देखते हैं कि उसे कौन बस में कर लेता है। तभी सिक्कड़ से बंधा एक भयानक, विशाल, काला अश्व लाया गया, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। वह दोनों नथुनों से फुँफकार रहा था मानो चुनौती दे रहा हो कि कोई उसकी पीठ पर चढ़कर दिखा दे। किसी तरह नन्द अपने शरीर को संभालकर घोड़े पर चढ़े। परंतु दोनों पैरों पर खड़े होकर घोड़े ने उन्हें गिरा दिया। अर्जुन कुछ क्षण तक घोड़े की पीठ पर जमे रहे एवं लगाम को झटका कर घोड़े की पीठ पर चाबुक दे मारा। किंतु घोड़ा अचानक भड़क गया एवं पैर मारने लगा। अर्जुन ने ऐंड़ लगाई और घोड़े की पीठ पर से गिर गए। तभी वहाँ अनेक अश्वपाल आ गए और उन्होंने घोड़े को चालाकी से लोहे के सिक्कड़ में बाँध दिया। पागल की तरह व्यवहार कर रहे इस जंगली घोड़े को देखकर लोगों ने कुँवर से कहना शुरू कर दिया कि वे इस अश्व को न छेड़ें क्योंकि इसके मन में तूफान है, इसका क्रोध अग्नि के समान है और सभी को

कुँवर की जान प्यारी है। लेकिन कुँवर ने आदेश दिया कि इस अश्व के सिक्कड़ को तुरंत खोला जाए। राजकुँवर सिक्कड़ पकड़ते हुए उसके निकट गए एवं घोड़े के सिर पर प्यार से दाहिना हाथ फेरते हुए लगाम थामकर प्रेममय मधुर वचन बोले। फिर घोड़े के नेत्र एवं गले पर हाथ फेरते हुए उसकी पीठ पर ले गए। यह देखकर सभी लोग चकित थे। घोड़ा शीश झुका कर चुप-चाप उनकी आज्ञा मान रहा था। ऐसा लगता था कि मानो कोई ज्ञानी पुरूष अपने गुरू की वंदना कर रहा हो। कुमार घोड़े पर सवार हुए तब भी वह शांत रहा। वह कुँवर के आज्ञानुसार चल रहा था एवं उसके हाव-भाव पूरी तरह बदल चुके थे। जण-गण पुकार कर कहने लगे कि राजकुँवर सिद्धार्थ ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इसमें कोई संशय नहीं है।

विवाह

राजा सुप्रबुद्ध राजकुमार के सारे कला कौशल को देखकर आश्चर्यचकित और प्रसन्न हैं। उन्होंने कहा कि राजकुमार ही सबके प्रिय रहे हैं एवं सबकी यही कामना रही है कि वे सर्वश्रेष्ठ रहें। लेकिन आपकी शक्ति देखकर कौन आश्चर्य से नहीं भर जाएगा ? सभी लोग कहते हैं कि आप अपने में ही खोये रहते हैं और सपने देखते रहते हैं। युद्धक्षेत्र में, वनों में शिकार के समय, सांसारिक व्यवहार कुशलता में एवं कुशल लोगों के बीच आप सबसे भिन्न हैं। पर आपने सभी पराक्रमियों को जीत लिया। यह पुरूषार्थ आपने कहाँ से प्राप्त किया ? कैसे प्राप्त किया ? आपके पुरूषार्थ से यह पृथ्वी, नगरी और जन्मभूमि कपिलवस्तु धन्य हुई है।

पिता का निर्देश पा राजकुमारी ने सोने से सुसज्जित काली धारी युक्त साड़ी में अपने दोनों हाथों से जयमाल उठाया। घूँघट में वह मंद-मंद मुस्करा रही थी। जनसामान्य के बीच से वह कुँवर सिद्धार्थ के पास

तीव्रता से पहुँची मानो वह उनकी दिव्य छटा हों। कुँवर के पास ही वह पागल अश्व गर्दन झुकाकर नम्रता से चुपचाप खड़ा था।

राजकुमारी कुँवर के निकट गईं एवं अपना चंद्रमुख उठाया। उनके प्रेम रस से पूर्ण आँखों का सपना पूर्ण हुआ। राजकुमार के गले में जयमाला डाली। जय गान पद गाकर राजकुँवर का चरण स्पर्श किया एवं पुलकित होकर, हृदय में प्रेम भाव भर कहा, "हे प्रियतम ! आप मुझे देखें। मैं सब विधि से आपकी पत्नी बन गई हूँ।" सभी लोग उन दोनों को देखकर हर्षित थे एवं उन दोनों पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।

कनक जड़ित साड़ी का रहस्य

बहुत दिनों बाद जब सिद्धार्थ बुद्ध हो गए तब विनय पूर्वक शिष्यों ने इस कथा का मर्म जानना चाहा कि यशोधरा ने जयमाल के समय कनक जड़ित साड़ी क्यों पहनी थी एवं उनका हृदय गर्व एवं अनुराग से क्यों भरा था ?

बुद्ध ने कहा, "मुझे याद आता है लाखों वर्ष पूर्व जन्म की बात है। मैं किसी जन्म में हिमगिरि के सघन वन का बाघ था और अपने भूखे मित्रों के साथ वन में दौड़ता रहता था एवं झाड़ियों में छिपकर शिकार किया करता था। तारों से आच्छादित आकाश के नीचे मैं शिकार खोजते हुए मनुष्य और मृग की गंध सूंघकर और उन्हें पहचान कर उन पर प्रहार करता था। जैसे ही गायें चकित होकर अपने काले नेत्रों को उठातीं मैं समझ जाता कि उनकी मृत्यु निकट आ गई है। वन में अथवा नदी के किनारे मुझे जो भी साथी मिले उनमें एक अति सुंदर बाघिन थी और उसे प्राप्त करने के लिए एक दिन सभी बाध आपस में लड़ पड़े थे। उस बाघिन का चर्म पीला था और उस पर लंबी काली धारियाँ खींची हुई थीं जैसी कंचन जड़ित साड़ी यशोधरा ने पहन रखी थी। उसको पाने के लिए

जंगल में घमासान युद्ध हुआ एवं सभी बाघ दाँत और नखों के घाव से कराह रहे थे। वह सुंदर बाघिन इस क्रूरतम लड़ाई को चुपचाप, धैर्यपूर्वक देख रही थी। जब मैं उस भीषण युद्ध में विजयी हुआ तब वह कूदकर मेरे पास आई और प्रेम से मेरे घायल शरीर को चाटने लगी। युद्ध में हारे बाघों के बीच वह गर्जना करती हुई मुझे अपने साथ ले गई। प्रेम और गर्व के साथ वह बाघिन मेरे संग रही। इस तरह जन्म-मरण का चक्र घूमता रहता है एवं पिछले जन्मों का अनुराग अगले जन्म में प्रकट होता रहता है।"

यशोधरा को पाकर कुँवर अति आनन्दित हुए। सूर्य जब मेष लग्न में आया तो उत्तम घड़ी देखकर सुप्रबुद्ध के घर बड़े धूम-धाम से ब्याह की तैयारी की गई । विवाह मंडप दिव्य था एवं तोरणद्वार अनेक रंगों से सुसज्जित था। मंगल गीत गाती नारियाँ एवं गाजे-बाजों सहित भीड़ ऐसी प्रतीत होती थी मानो बहुरंगी फूलों की क्यारियाँ हों। सुंदर नारियाँ अट्टालिकाओं से पुष्प वर्षा कर रही थीं एवं द्वारचारियाँ मधुर गीत गा रही थीं।

वर-वधु प्रसन्न मुद्रा में विवाह-आसन पर बैठे। मधु पर्व, कंगन, ग्रन्थिबंधन, भाँवरी एवं सभी बंधनों का रीतिपूर्वक पालन किया गया। विवाह में ऋषिगणों ने मंत्र पढ़ा एवं ब्राह्मणों ने वर-वधु को आशीष दिया। ब्याह सम्पन्न होने पर राजा सुप्रबुद्ध ने अश्रुपूर्ण नेत्रों एवं वात्सल्य मुस्कान के साथ यशोधरा के पास आकर राजकुँवर से कहा, "यशोधरा आपकी पत्नी हो गई। इस पर दया कर इसे मानपूर्वक रखिएगा।" इस तरह यशोधरा अपने पिता का घर छोड़कर राजकुँवर के साथ अपने ससुराल, राजमहल के लिए विदा हो गई।

रंगभवन विहार

नवदंपति प्रेमरस से परिपूर्ण था लेकिन राजा को उनके प्रेम पर पूर्ण विश्वास नहीं था। इसलिए उन्होंने एक मनोहर, रमणीय, अद्वितीय

एवं विशाल प्रेमालय बनाने की आज्ञा दी। कुँवर का प्रेमागार इतना निराला और सुंदर बनाया गया कि वह पृथ्वी पर अद्वितीय था। उसकी सीमाओं पर हरे-भरे पहाड़ उसकी शोभा बढ़ाते थे एवं पास में निर्मल एवं धवल रोहिणी नदी की धारा बहती थी। भौरों के गुंजन समान कल-कल की सुमधुर ध्वनि करती हुई हिम चट्टानों से उतर गंगा की धारा में मिल जाती थी। प्रेमागार के दक्षिण दिशा में विशाल एवं सघन वट, शाल एवं आम के वृक्ष फैले थे जिन पर फूलों से युक्त मालती लता फैली हुई थी। यह प्रेमागार कोलाहल भरे राजनगर से दूर बनाया गया था। उस महल के उत्तर दिशा में शुद्ध, श्वेत हिमालय खड़ा था। बर्फ से ढँकी हुई हिम शिखाएँ विषद एवं विशाल थीं। हिमाच्छादित चट्टानें हरियाली भरी ढालें थाम कर खड़ी थीं। ऊपर नीला गगन एवं नीचे पर्वत की मालाकार श्रेणियाँ फैली थीं। उस अद्भुत एवं अगम्य धरती पर विशाल कगारों वाली अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं। वह अद्भुत दृश्य मनुष्य को कल्पना की उड़ान भराकर देवालयों के अमरधाम (स्वर्ग) में रमा देता था। चोटियों के नीचे घना वन था जिसमें झरने बहते थे। उसमें चीर, अर्जुन, देवदार के असंख्य वृक्ष थे जिसमें बाघों की गर्जना एवं हिरणों के दल की चीत्कार सुनाई पड़ती थी। कहीं चट्टानों पर खड़े होकर भेड़ मिमियाते थे तो कहीं गरूड़ किलकारी मारते हुए गगन में विचरण करते थे। नीचे हरी-भरी धरती ऐसे दिखाई देती थी मानो देवताओं का दल आसन बिछाकर सुख एवं शांति की रचना कर रहा हो। उन पहाड़ियों एवं वनों के सामने एक छोटी समतल पहाड़ी पर स्थापकों ने अनेक दिव्य मंडप बनवाए । उन मंडपों में पौराणिक गाथाएँ चित्रित की गई जिनमें राधा-कृष्ण एवं गोपियों की रासलीला दर्शाई गई। कहीं पर दुसाशन द्रौपदी का चीर हरण करता हुआ दिखा तो कही पर हनुमानजी सीताजी को प्रिय राम का संदेश देते हुए दिखे। कहीं पर ऐश्वर्य एवं बुद्धि के दाता गणेशजी तोरणद्वार पर विराजते हुए दर्शाए गए। उपवन एवं प्रांगण के मध्य रास्ता के बाद भीतर में एक द्वार था जिसका चौखट भारी नीले संगमरमर पत्थर का बना था

जिसमें चंदन के विशाल किवाड़ थे जो विचित्र चित्रों से सुसज्जित थे। द्वार के भीतर विशाल मंडप शीतल लताओं से घिरा था एवं उसमें सीढ़ी एवं सुंदर जालियाँ बनी थीं। भवन में अनेक स्तंभ थे और उनके ऊपर सुन्दर चित्रों से रचित छत थी। कहीं मनोहर फुहारों से निरंतर झरनों की धार निकल रही थी तो कहीं बहुरंगी कमल खिले थे एवं बहुरंगी मछलियाँ तालाब में विहार कर रही थीं। इन्द्रधनुषी रंग वाले अनेक पक्षी ताड़ों पर फड़फड़ाते थे और सुन्दर सुरक्षित घोंसला बनाकर उनमें रहते थे। सुन्दर शिलाखंडों पर मोर पंख पसारकर घुमते थे एवं सफेद बगुला उनको देखते रहते थे। तोते एक फल से उड़कर दूसरे फल पर जाते थे, चिड़िया चहचहाती थीं एवं फूल भी आपस में खेलते थे। कौआ की आवाज पर बंदर किलकारी मारते थे। सभी जीवधारी उस शांतिधाम में आनन्दपूर्वक रह रहे थे। रसपूर्ण प्रेमधाम हमेशा प्रेमभाव से भरा रहता था। इस तरह विश्राम भवन की छटा सुखद एवं रमणीय थी। वहाँ सभी लोग मधुर वचन बोलते थे एवं हमेशा सेवा भाव में लीन रहते थे। नित्य नये-नये रूचिकर आनन्ददायक साज सजाये और बजाये जाते थे। कुँवर की खुशी से सभी प्रसन्न थे एवं गर्व के साथ उनकी आज्ञा का पालन करते थे। इस प्रकार कुँवर का जीवन नाना सुख-सुविधाओं के बीच हास-परिहास युक्त व्यतीत हो रहा था। भवन के भीतर गुप्त गृह था जिसकी कलाकारी हृदय को मोहने एवं मस्त करने वाली थी। पहले संगमरमर लगा सुंदर क्षेत्र था जिसके ऊपर नीला आसमान एवं मध्य में सरोवर था। संगमरमर के चित्रों से अंकित एवं पच्चीकारी युक्त सीढ़ियाँ हृदय को मुग्ध कर देती थीं। ग्रीष्मकाल की गर्मी ऐसी लगती थी मानो स्वच्छ ठंडी ओस की बूँदों पर पैर रखा गया हो। सूर्य की किरणें वृक्षों के बीच से निकलकर स्वर्णिम प्रकाश फैलाती थीं। जब-जब राजकुँवर महल के अंदर प्रवेश करते, प्रखर दिन प्रेममय संध्याकाल में बदल जाता। रंगभवन के भीतरी द्वार की सुंदरता पूरे जगत को आश्चर्यचकित करने वाली थी। अगरबत्ती की सुगंध मन को मोह लेती थी। दीप की रोशनी एवं कमरे के झरोखों से निकलने

वाली चाँदनी नक्काशी पर पड़ मनोहारी चमक देती थी। गद्देदार बिस्तरों पर स्वर्णिम चादरें बिछाई जाती थीं। द्वारों पर स्वर्ण जड़ित परदे लटकते थे। धवल, मृदुल प्रभात संध्या की तरह लगता था, रात्रि दिन की तरह तथा दिन रात्रि की तरह दिखता था। कड़ाही में छानकर विविध पकवान बनाए जाते थे और डालियों में कंदमूल तथा चुन- चुनकर फल लाये जाते थे। शीतल, मधुर एवं रसपूर्ण ठंडई तथा कठिनता से तैयार की गई मिठाइयाँ वर-वधू के लिए लाई जाती थीं। सुंदरियाँ अपनी भाव-भंगिमा एवं घुंघरू की झंकार से हमेशा सेवा में उपस्थित रहती थीं एवं मृदंग, वीणा सजाकर साज लगाती थीं। ऐसे सुंदर परिवेश में भला कोई कैसे उदास एवं अशांत रह सकता है ?

नृत्य करते पैरों की ताल पर ध्यान देते ही उद्वेलित मन क्षणभर में शांत हो जाता था। राजकुँवर दुखियों का दु:ख देखकर उदास न हों इसलिए रोग, शोक, पीड़ा, भय से कलान्त व्यक्ति कभी उनके सामने उपस्थित नहीं हो सकते थे। इस बात का भी विशेष प्रबंध किया गया था कि कहीं पर भी रूदन सुनाई न दे एवं चिता की ज्वाला दिखाई न दे। अत: हमेशा मधुर गीत गूँजते रहते थे एवं नर्तकियाँ अपने साजों पर नाचती रहती थीं। यदि किसी भी सेविका के बालों में कोई सफेद बाल दिखाई दे जाता था या नृत्य करते-करते उसके पैर थकते हुए से प्रतीत होने लगते थे तो उसको तुरंत राजकुमार की सेवा से हटा दिया जाता था। मुरझाये फूलों को तुरंत टहनी से तोड़ दिया जाता था एवं पीले, सूखे पत्तों को छिपा दिया जाता था। राजा की चेतावनी थी कि बुरे एवं उदास करने वाले दृश्यों को हमेशा राजकुमार से छिपाया जाए। "उदास करने वाले दृश्यों को उनके सामने मत आने दो एवं ऐसी व्यवस्था करो कि विविध सुख का साम्राज्य राजकुँवर की आँखों में हमेशा बसा रहे। इसी से प्रारब्ध की लेखनी मिट जाएगी एवं राजकुमार निश्चय ही चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे।" राजा कुँवर को भूपेश रूप में देखना चाहते थे ताकि पुत्र के

माध्यम से सर्वत्र अपनी कृति व्याप्त होते देख सकें। प्रेम एवं यौवन के बंधन में बाँधकर हर प्रहर उनकी रक्षा उसी तरह की जाती थी जैसे कारागृह में कैदियों की निगरानी की जाती है। आधे योजन से भी यदि कोई चीत्कार सुनाई देती थी तो चीत्कार करने वाले मनुष्य की तुरंत पिटाई की जाती थी। उस महल के फाटक बहुत मजबूत थे एवं बाहर जाने के लिए तीन द्वारों को पार करना पड़ता था। प्रत्येक फाटक मजबूत सिक्कड़ों से बंधा था एवं चौकीदारी के सुप्रबंध की सुदृढ़ व्यवस्था थी। राजा ने रक्षकगणों को आदेश दिया था कि कोई भी प्रतिकूल घटना होने पर वे अपना प्राण खो बैठेंगे। "किसी भी व्यक्ति को द्वार के बाहर जाने-आने न दिया जाए चाहे वह स्वयं कुँवर ही क्यों न हों।" राजा की आज्ञा का दिन-रात पालन होता था।

तृतीय सर्ग
राजकुमार को अदृश्य संदेश

राजकुमार सिद्धार्थ सर्वसुख सम्पन्न स्थान पर अपनी पत्नी यशोधरा के साथ सुखपूर्वक वास करते थे। वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, रोग तथा क्लेश के बारे में उन्हें लेश मात्र भी जानकारी नहीं थी यद्यपि यदा-कदा संदर्भित विषयों का उन्हें आभास भी मिल जाता था। फिर भी वे पुनः सुख की नींद में सोकर सब कुछ भूल जाया करते थे। कभी-कभार वे सपनों में गुम हो जाया करते थे और उठने के बाद मन बोझिल होने पर मात्र उसका अनुमान लगाने लगते थे। कभी-कभी जब पत्नी यशोधरा के वक्षस्थल पर सिर रखकर कुमार सोया करते थे और यशोधरा प्रसन्नचित्त हो अपने कोमल हाथों से धीरे-धीरे एकांत में पंखा झलती थी तब सहसा कभी-कभी "हे जन ! हे व्याकुल जन !" का उच्चारण करते हुए कुँवर घबड़ाकर उठ बैठते थे, "सारी बातें सुन रहा हूँ, सभी चीजों को जानता हूँ, आ रहा हूँ ! भ्राता !" उस समय उनका दिव्य मुख तेज-ज्योति से देदीप्यमान हो जाता था। उनके चेहरे पर करुणा की कोमल परछाईं दिखने लगती थी। यशोधरा शंकाग्रस्त हो, अश्रुपूर्ण नेत्रों से पति की भलाई के लिए पूछ बैठती, "हे प्राणनाथ ! आप पर कौन सा संकट या कष्ट आ पड़ा है, मैं जान नहीं पा रही हूँ।" कुँवर उठकर यशोधरा के उदास चेहरे को देखने लगते थे और फिर उसके आँसू सुखाने के उद्देश्य से हंसने लगते थे। संकेत पाकर संगीतकार वीणा के तार बजाने लगते थे। खिड़की के पास ही एक पुरानी वीणा रखी थी। हवा के झोंको से उसके तार आपस में टकराकर क्रीड़ारत हो जाते और वे अपने आप बज उठते थे। उनसे अटपटी सी धुन निकलने लगती थी। जो उस वीणा के मर्म को जानता, वही उसे सुन पाता था। सिद्धार्थ देवों की वाणी अच्छी तरह समझते थे। उनके कानों में यदा-कदा मधुर संगीत सुनाई पड़ जाता - "मैं वह वाणी हूँ, बयार हूँ जो नित्य विचरण करती रहती हूँ। थोड़े

से विश्राम के लिए तरस रही हूँ। यहाँ पर जीवन प्राणियों के हाहाकार, आह एवं झंझावातों के दायरे में सिमट कर रह जाता है। तुम्हारा यहाँ आने का कारण क्या है ? कहाँ जाना है ? यह हम नहीं जानते। यह नश्वर जीवन कहाँ ले जाएगा इसे भी नहीं समझ पाते। तुम्हारी तरह ही हम जैसे जीवों का यहाँ अवतरण हुआ है। परिवर्तन से युक्त दु:खों के बीच सुख की अनुभूति किसने की है ? दु:खों के परिवर्तनशील समय में तुम सुखी नहीं हो। सुअवसर आने पर कभी-कभी ही सुख की प्राप्ति होती है। जीवन और पवन दोनों की दशा एक सी है।

हे गुरूवर ! सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करते हुए हम ग्रह-नक्षत्र के ऊपर अपना क्रोध निकालते हैं। इस ब्रह्मांड में न जाने कितनी बाधाएं और विपदाएं हैं जिनको सहन करते हुए हम पछताते हैं और आँखें सर्वदा नम हो जाती हैं। अपने जीवन, जिसका एक न एक दिन अन्त होना ही है, को अति प्रिय मानते हुए उपहासपूर्ण क्रंदन करना ही हमारा ध्येय बन गया है। इस दु:ख से मुक्ति पाना ठीक उसी प्रकार है जैसे आसमान को अपनी उंगली दिखाना या बहती हुई धारा को रोकने के लिए अपनी हथेलियों का प्रयोग करना। इस पृथ्वी पर तुम्हारा अवतरण मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से ही हुआ है। पाप ग्रस्त लोग अपनी मुक्ति हेतु तुम्हारी राह देख रहे हैं। लोग मिथ्या जीवन के भँवर में फँस चुके हैं। अतः हे माया पुत्र ! उठो और इनको इन कष्टों से मुक्ति दिलाओ। हम आकाशवाणी के संप्रेषक हैं। हम कहीं इस भँवर जाल में और न फँस जायें। उठो और चलो। कुँवर ! अब इस संसार में कुछ खोजो। प्रेम जाल से मुक्त हो दु:ख को अब अपना बना लो, संसार में व्याप्त वैभव को छोड़ दो और दु:खों को अंगीकार कर संसार को सुखमय बनाओ। वीणा के तारों से उदास होकर अब हम दु:ख विलाप करने लगे हैं क्योंकि तुम नहीं जानते कि हम सभी अपने साथ कितना दु:ख ढो रहे हैं। जरा ध्यान दो, हम उपहास उड़ाते हैं और तुम उस धोखे की छाया में भूल से बैठे हुए हो।"

शाम हुई। यशोधरा को साथ ले, उसका हाथ पकड़ राजकुमार अपनी मित्र मंडली के साथ अपने आसन पर जा बैठे। एक दासी गोधुली बेला का समय बिताने के उद्देश्य से एक पुरानी कहानी सुनाने लगी जिसमें प्रेम की तथा उड़ते जादुई घोड़े की चर्चा थी। वह दूर-दूर देश की रंग-रंग की बातें बताने लगी, जहाँ पीले वर्ण के लोग निवास करते थे एवं सूर्य रात्रि का दर्शन कर सागर में डूब जाया करता था। चित्रा द्वारा पवन गीत एवं कथा सुनकर, कुँवर ने यशोधरा से कहा "तुम इसे अपना मुक्ताहार दे दो और मुझे यह बताओ कि क्या यह धरा सचमुच ही इतनी सुन्दर और विशाल है ? क्या ऐसा भी देश है जहाँ सूर्य सागर में डुबकी लगाता है, यहाँ पर निवास करने वाले जीवों की तरह क्या वहाँ भी करोड़-करोड़ जीव होंगे ? वहाँ भी इस संसार की तरह ही कष्टों एवं दु:खों के बीच निवास कर रहे होंगे ? अगर मेरे प्रयत्न करने से उनकी पुकार सुन ली जाती है तो मैं उनकी सहायता अवश्य करूँगा। कभी-कभी मैं पूर्व दिशा से सूर्य को निकल कर निरंतर स्वर्णिम मार्ग पर बढ़ते हुए देख कर आश्चर्यचकित हो उठता हूँ। मैं सोच में डूब जाता हूँ कि वे प्राणी कैसे होंगे जो उगते हुए सूर्य की किरणों को देख कर उसकी अगवानी करते हैं। चित्रे ! तुमने अनगिनत देशों की बात सुनाई किन्तु उड़ने वाला वह घोड़ा कहीं नहीं दिख रहा है। अगर मैं उसे पा जाऊँ तो इस भवन को छोड़ दूँ और दिन-रात इस पृथ्वी का विस्तार देखता फिरूँ ! गरूड़ पक्षियों का विस्तृत व विशाल राज्य कितना मनोहर है जिसमें वे पंख पसार कर अंबर को छूने के लिए उड़ते रहते हैं। जहाँ भी मन करता है वहीं घूम आते हैं। मुझे भी अगर पंख मिलें तो मैं भी विचरता फिरूँ। उड़-उड़ कर हिमगिरि के उच्च्च शिखर छान डालूँ जिनपर सूर्य की रक्त समान लाल रंग की किरणें सदा पड़ती रहती हैं और वहीं बैठा-बैठा दृष्टि पसार कर चारों तरफ सारा जग देखूं। मैंने अब तक इस विस्तृत भूखंड को देखने का प्रयास क्यों नहीं किया ? द्वार के बाहर क्या-क्या है उसको जानने की चेष्टा क्यों न की ?" तब एक ने उत्तर दिया, "पहले अपना नगर है जिसमें

ऊँचे मंदिर, बाग, तड़ाग तथा आम के वृक्ष हैं। उसके आगे सुंदर और समतल खेत हैं और फिर नाले, नदी, मैदान और कोसों तक जंगल ही जंगल हैं। कुँवर वर ! उसके आगे राजा बिंबिसार का राज्य है। यह धरा बहुत ही विशाल है जिसमें करोड़ों लोग बसते हैं।" कुँवर ने आदेश दिया, "छन्दक से कहो, वह कल रथ लेकर आए और मुझे रथ में बैठा नगर का दर्शन कराये।"

उद्‌बोधन

दूत ने जाकर राजा से ये सारी बातें कहीं, "हे राजन ! कुँवर की तीव्र इच्छा है कि वे राजमहल से बाहर जायें। वे बाहर के प्राणियों को देख मन बहलाना चाहते हैं तथा इस हेतु उन्होंने कल दोपहर के समय रथ जोतकर लाने का आदेश दिया है।" कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त राजा ने कहा, "यह अच्छा अवसर है पर आज पूरे नगर में डौंडी पिटवा दी जाए कि हाट-बाट सभी सुन्दर सजें और कहीं भी, कुछ भी कुरूप या बदसूरत नहीं दिखे। कुँवर जिस समय गुजर रहे हों उस क्षण कोई वृद्ध, लँगड़ा, रोगी या अन्धा अपने घर से बाहर न निकले। नगर साफ, स्वच्छ, सुसज्जित एवं सुंदर दिखे। सारे रास्ते जल से धो दिए जायें और अपने-अपने दरवाजे पर नारीगण कुँवर के सम्मान हेतु थाली में दूर्वादल, रोली, दही आदि सजाकर रखें। हर घर में फूल-पत्तों से सजी सजीली झालरें लटकती रहें जिससे मनोरम दृश्य परिलक्षित हो। साथ ही दीवारों पर अति शोभनीय एवं अतुलनीय चटकीले चित्र अंकित हों। पेड़ की टहनियों पर रंग-बिरंगे झंडे ऐसे फहरा रहे हों मानो कुँवर के आने की खुशी में मस्त हो झूम रहे हों। मंदिर और मठ आदि भी सतरंगी रंग में रंग, रूचिकर ढंग से श्रृंगारित हों। सूर्य आदि देवताओं की प्रतिमाओं को उनके अनुरूप सजाकर अप्रतिम दृश्य प्रस्तुत किया जाए। आज इस नगर की सजावट ऐसी की जाए कि देखने से वह इन्द्र के नगर के समान प्रतीत हो।"

उद्घोषणा करने वाले ने पूरे नगर में ढिंढोरा पीटकर लोगों के समक्ष घोषणा की, "सुनो नगरवासियों, सुनो ! नगर नरेश ने यह आज्ञा दी है कि आज नगर में कोई अमंगलकारी दृश्य कुँवर के समक्ष नहीं आना चाहिए। अंधे, लँगड़े, लूले, दुबले एवं बूढ़े अपने घरों से न निकलें। अगर आज किसी की मृत्यु भी हो जाए तो उसका शव दाह-संस्कार हेतु रात्रि तक न निकाला जाए। यह राजा का निर्देश है, इसे सभी नर-नारी ध्यान से सुनें।"

सभी घर सजाये गए, पूरा नगर सजा था और सारे रास्ते भी सजाए गए थे। कपिलवस्तु नगर का दृश्य सजा-सँवरा एवं चित्रित, मनोरम एवं मनोहारी था। राजकुमार भी अपने सुन्दर, नक्काशी किए रंगीन रथ पर सवार होकर नगर भ्रमण हेतु निकले। जिस रथ पर राजकुमार बैठे थे उसे बर्फ के समान दो श्वेत तेज घोड़े खींच रहे थे। रथ मंडप पर प्रखर रश्मियाँ पड़ रही थीं। नगर वासियों की खुशी देखते ही बन रही थी। वे कुँवर के सम्मान में कर जोड़े अभिवादन कर रहे थे और राजकुमार नगरवासियों को देखकर अति प्रसन्न हो रहे थे। सभी को इस प्रकार हँसता-मुस्कुराता देखकर कुँवर को लग रहा था कि मानो जीवन अति सुखमय है। राजकुमार ने कहा, "जन मानस मुझे बहुत चाहते हुए दीख रहे हैं। राज नरेश सदाचारी और सरल हैं। तभी तो सभी जन उन पर मुग्ध हो रहे हैं। मुझे नहीं पता कि मैंने कभी इनका कौन सा उपकार किया है या बहनों की कौन सी सेवा की है ? मन करता है कि वह बालक जिसने मुझपर मुग्ध होकर फूलों का हार फेंका और कलियाँ बरसायीं, उसे रथ पर बैठा कर गलियों से गुजरते हुए उसको नगर की शोभा दिखलाऊँ। ऐसा देश और सुसमृद्ध जन समाज पाकर राज-काज करना कितना सुखद है ? ओह ! कितने आनन्द की यह सहज बात है ? मुझे देखकर प्रत्येक भाई मन से प्रफुल्लित एवं प्रमुदित है। बहुत सारी ऐसी वस्तुएं हैं जिसकी हमने अपेक्षा नही की जिसे जनमानस हृदय में

पाकर संतुष्ट होंगे।" राजकुमार छंदक से कहते हैं, "रथ को आगे बढ़ाओ; मैं ध्यानपूर्वक नगर का पूरा परिदृश्य देखूँ। मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि यह देखूँ कि यह विश्व कितना सुखकर है ?"

एक दरवाजे से होकर दूसरे दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ रथ आगे चलता जा रहा था। रास्ते के दोनों ओर जनसमूह का सैलाब उनकी अगवानी और अभिवादन करने के लिए खड़ा था। राजकुमार की जय-जयकार का घोष करता हुआ जनसमूह थकता नहीं था।

वृद्धावस्था

राजा के आज्ञाधीन जन समूह में हर कोई प्रसन्नचित्त एवं आनन्दित था। किन्तु उसी क्षण एक वृद्ध, जिसका शरीर जर्जर हो चुका था, जिसके हाथ-पैर काँप रहे थे, अपनी झोंपड़ी से हाँफते हुए बाहर निकला। उसके शरीर पर मैला-कुचैला, चीथड़ा लिपटा हुआ था। उस जन समूह में कौन था जो भूल से भी उसे देखता ? चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं, उसकी त्वचा हड्डियों को छोड़ चुकी थी और लटक रही थी। सामने की ओर झुकी हुई समकोण बनाती हुई उस वृद्ध की पीठ को देखकर उसकी उम्र का पता चल रहा था। उसकी धँसी आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी। दाँत विहीन उस वृद्ध की गर्दन निरंतर हिल रही थी तथा आश्चर्यचकित हो वह इस धूम और उत्साह को एक थके व्यक्ति की तरह देख रहा था। शक्तिविहीन तथा बेकार हो गए शरीर को टेकने में असमर्थ एक लाठी पर उसने अपने इस कंकाल स्वरूप शरीर को हाथ से टेक रखा था। दूसरे हाथ को अपने हृदय पर ऐसे रखे हुए था मानो उसे सांस लेने में अत्यधिक कष्ट हो रहा हो। उसने धीमे स्वर में कहा, "हे दाता ! तुम्हारी जय हो- मुझे कुछ दे दो, मैं एक या दो दिन और जीवित हूँ।" हाथ फैलाए खड़ा, कफ से रूंधे गले के कंपित स्वरों में कराहते हुए फिर कहा, "कुछ मिल जाता, दाता !" पर जन समूह उसे धकेल क्रोध से बोल उठा,

"दिखता नहीं, राजकुमार आ रहे हैं ?" राजकुमार उस दृश्य को देख जन समूह को संबोधित कर कहने लगे, "रहने दो, उसे रहने दो।" तत्क्षण राजकुमार ने अपने सारथी से एक-दो प्रश्न किया, "यह क्या है ? देखने में तो यह मनुष्य जैसा है पर है यह बहुत ही विकृत, गरीब, गंदा एवं कमजोर। क्या इस संसार में ऐसे भी मनुष्य जन्म लेते हैं ?" 'चार दिन रहूँगा' इस कथन में क्या अर्थ छिपा हुआ है ? इस मनुष्य का हाड़-हाड़ दिखलाई पड़ रहा है, क्या इसे खाने को भोजन नहीं मिलता ? इस पर कौन सी विपत्ति आ पड़ी है जो दिखलाई नहीं दे रही है ?" प्रश्नों के उत्तर में सारथी ने कहा, "सुनिए, राजकुमार ! यह बूढ़ा अब अपने जीवन के भार को ढो रहा है, और कोई बात नहीं है। चालीस साल पहले इस वृद्ध की पीठ सीधी थी, अंग सुडौल और सुन्दर थे तथा दृष्टि भी ठीक थी। किन्तु काल कराल रूपी तस्कर ने इसके शरीर का सारा रस चूस लिया है और यह बेचारा शारीरिक शक्ति और अब बुद्धि-विवेक भी खो बैठा है। इसका जीवन तेल विहीन दीपक के समान बुझ रहा है। इसके शरीर में अब कुछ भी सार शेष नहीं बचा है। ज्योति पुंज जवाब दे चुकी है। अब इस जर्जर शरीर में जितनी सी भी लौ बची है उसका क्या भरोसा? जाने यह कब अंतिम बार तेज लौ के साथ जल बुझे ? राजकुमार आप मान लें कि यही वृद्धावस्था है। आप तो सुशील और समझदार हैं, आप इस ओर ध्यान देकर अपना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं ?" राजकुमार ने प्रश्न किया, "क्या सभी की यही गति होती है या सौ, दो सौ में किसी एक की ऐसी होती है ?" छंदक ने कहा, "सभी इस दशा को प्राप्त होंगे अगर इतने दिनों तक जीवित रह पायेंगे।" राजकुमार ने पुनः पूछा, "यदि मैं इतने दिनों तक जिंदा रहूँ तो क्या मेरा अंत भी ऐसा ही होगा ? गोपा (यशोधरा) अगर अस्सी वर्ष की उम्र तक जीवित रहती है तो क्या वृद्धावस्था इसी प्रकार उसे भी घेर लेगी ? गंगा और गोतमी समान सखियाँ, जो अभी कमसीन और सुन्दर हैं, उनका शरीर भी क्या इसी तरह जर्जर और शक्तिविहीन हो जाएगा ?" "हाँ, निश्चित राजकुमार!"

सारथी का उत्तर था। राजकुमार बोले, "बस करो और अब घर का रास्ता पकड़ो। रथ मोड़ो और तेजी से घर ले चलो। मैंने आज जो देखा उसका मुझे जरा भी अनुमान नहीं था।" राजकुमार उसी क्षण अपने भवन लौट आए। उदास हो अत्यन्त खिन्न मन से सोचते रहे। उनके समक्ष फल, पकवान सहित विविध प्रकार के व्यंजन परोसे गए पर राजकुमार ने न उन्हें देखा, न छुआ। सारे दास सिर झुकाए खड़े रहे। उनका मन मोहने के लिए राज नर्तकियों ने अथक प्रयास किया किन्तु वे उदास एवं मौन हो अविराम सोचते रहे। दुखी यशोधरा ने उनके चरणों में अपना सर झुकाकर पूछा, "कहें नाथ, क्या हुआ ? क्या आपको मुझमें सुख प्राप्त नहीं हो रहा है जो इस तरह उदास एवं खिन्न मन बैठे हैं ?" राजकुमार ने कहा, "सुख ? उसी की बात तो मन में खटक रही है। इस जीवन में सुख का अवश्य अन्त होगा। यशोधरे ! एक दिन हम बूढ़े हो जायेंगे जिसमें न प्रेम होगा, न रस, न सौन्दर्य और न शक्ति। हम दोनों अधर में अधर मिलाकर अगर भुजपाशों में बँधे भी रहें, तब भी काल कराल घात लगाकर हमारे बीच घुस आयेगा। काल इस उमंग, इस यौवन सौन्दर्य को इस प्रकार हर लेगा जिस प्रकार रात्रि का अंधकार सूर्य की रोशनी को हर लेता है। यही जानकर मेरे हृदय में शंका छाई है कि सोचो, यह काल कसाई कितना विकराल है ? हम कैसे इससे अपना यौवन-रस बचाकर रखें ?" राजकुमार रात भर बैठे रहे और बेचैन होकर यही बात सोचते रहे।

राजा के स्वप्न

उधर राजा शुद्धोदन रात्रि में स्वप्न देखकर बेहाल हो रहे थे। इंद्रध्वज का गिरना चिंता का कारण था। प्रचंड हवा के झोंकों ने उसको गिरा दिया था, उसके टुकड़े-टुकड़े कर उसे मिट्टी में मिला दिया था। फिर चारों दिशाओं से कुछ देव पुरुषों का आगमन हुआ जैसे वे कहीं प्रतीक्षारत

हों और उन लोगों ने उस टूटे, गिरे रेशमी ध्वज को तुरंत उठाया और उसे नगर द्वार के बाहर भेज दिया। दूसरे स्वप्न में राजा ने दस हाथियों को देखा। उनके पदाघात से पृथ्वी कंपित हो रही थी। उन हाथियों में जो गज सबसे आगे चल रहा था, राजकुमार उसी पर विराजमान दिखे। तीसरे स्वप्न में एक जगमग रथ दिखा। चार घोड़े उसे अति प्रबल वेग से खींच रहे थे। उनके नथुनों से प्रचंड धूँआ निकल रहा था और मुख से फेन फेंक रहे थे। निद्रा अवस्था में ही व्यस्त राजा इस स्वप्न का अर्थ जानने के लिए उत्सुक थे। चौथे सपने में मंत्रों से अंकित एक अलौकिक चक्र दिखा जो अपने आप अनवरत चलता जा रहा था। उस चक्र की सोने की नाभि चमक रही थी और उसकी परिधि मणियों से सुशोभित थी। राजा इसका अर्थ कैसे निकाल सकते थे ? पाँचवें स्वप्न में नरेश ने नगर और आकाश के बीच विराट भूमि स्थल देखा जहाँ राजकुमार प्रकाश पुंज समान अलौकिक वेशभूषा में सुशोभित हो नगाड़े पर कठोर रूप से डंके का प्रहार कर रहे थे और उसकी घनघोर ध्वनि चारों ओर गगन में गरज रही थी। छठे स्वप्न में राज नरेश ने एक सुंदर स्तंभ खड़ा देखा जो ऊपर की ओर उठता चला गया। उसके सिंहासन पर राजकुमार विराजमान थे, दूसरी ओर राजा पसीने से तरबतर हो रहे थे। मणियों की वर्षा हो रही थी और जनगण उसे लूट कर धन्य हो रहे थे। सातवाँ स्पप्न देखकर राजा का दिल घबड़ाने लगा क्योंकि हर दिशा से रोने की आवाज आ रही थी। मुँह ढँककर छः पुरुष रोते-बिलखते भाग रहे थे। पता नहीं इन स्वप्नों को देखते समय राजा सोये थे या जाग रहे थे।

इन सपनों को देख कर राज नरेश के मन में संशय छा गया पर इनकी परिणति कोई भी नहीं बता पाया। राजा ने तब खिन्न होकर कहा, "मेरे घर दु:ख आता हुआ दिख रहा है पर कोई भी मुझे इन स्वप्नों का मर्म नहीं बता पा रहा है।" सभी लोग उदास होकर परस्पर सोचने लगे कि सपनों के गूढ़ अर्थ पर कैसे विचार हो। उसी क्षण राजद्वार से एक वृद्ध

ऋषि आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने पवित्र मृग चर्म धारण कर रखा था और सिर पर जटा बाँधे हुए थे। सभी को टालकर कहा, "हम राजा के कल्याण के लिए पधार रहे हैं। चलो, अभी तुरंत सपनों का सारा फल बताते हैं।" द्वारपाल अपने साथ ऋषि को नरेश के पास ले गए और उन्होंने ध्यानपूर्वक सभी स्वप्नों के विषय में सुना और सविनय कहा, "हे राजन ! ध्यान से सुनिए। यह धरती धन्य है, अब सूर्य आकाश चढ़ेगा और तीनों लोकों में व्याप्त होने वाला प्रकाश पुँज अब अटल बढ़ेगा। नृपवर! जो सात स्वप्न आपको दिखाई पड़े वे सातों मंगलमय और शुभ फलदायी थे जिनमें इस जगत् की भलाई छिपी है। आपने जो भारी इंद्रध्वजा को टूट-टूट कर गिरते हुए तथा संपूर्णतः समाप्त होते हुए देखा उसमें ध्वजा का पतन प्राचीन मतों का पतन दर्शाता है। प्राचीन मान्यताओं का अंत और नये धर्म का उदय होने वाला है। सभी की दशा सदा एक समान नहीं रहती, वे मनुष्य हों या देवता। रोज दिवस बदलते हैं, युग बदल जाते हैं, कल्प बीत जाते हैं। भूमि को कंपित करने वाले जो दस हाथी दिखे उन्हें दस शील गिनिए और उन्हें यथावत् धैर्यपूर्वक धारण कीजिए। राजपाट, घर-द्वार त्याग कर आपके पुत्र सत्य मार्ग की खोज करके सारे जगत् को कँपाएंगे। जो चार अश्व आग उगलते और चलते दिखे कुँवर ये चारों ऋषिपाद हस्तगत करेंगे। अतिशय प्रखर प्रकाश और ज्ञान गंगा को धारण कर तिमिर को काटेंगे और समस्त संशय नष्ट कर देंगे। जो स्वर्ण नाभि युक्त चमकता हुआ चक्र दिखा वह नरेश वर ! वह धर्म चक्र है जिसे कुँवरवर फेरेंगे और जो विशाल दुंदभी राजकुमार बजा रहे थे, जिसकी घोर आवाज सभी लोकों में सुनी गई और छा गई वे गंभीर गर्जन उनके विमल उपदेश हैं जिन्हें सुनकर इस वसुधा और लोगों के शुभ दिन लौट आएँगे। आकाश की ओर उठता हुआ जो मीनार दिखाई पड़ा वह बौद्ध शास्त्र है जो लगातार सर्वत्र फैलता ही जाएगा। मीनार के ऊँचे शिखर से जो अनमोल रत्न गिरते दिखे वे सुर-नर के हितार्थ कुँवर द्वारा दिए गए उपदेश हैं और जो छः पुरूष मुँह ढाँपकर बिलखते हुए जाते दिखे,

वे पूर्व काल के आचार्य हैं जो अब बुद्ध का लोहा मानकर राजकुमार के आगे नत-मस्तक होंगे। कुँवर दिव्य ज्ञान एवं अमृत प्रतिभा संपन्न हैं और भ्रम जाल काटने वाले तेजस्वी, पराक्रमी पुरुष हैं। अति प्रसन्न हों, राजनरेश ! आपके पुत्र की सम्पत्ति सकल संसार के समस्त राजपाट से अति बढ़कर है। कुमार जो काषाय वस्त्र शरीर पर धारण करेंगे वे स्वर्णिम वस्त्रों से भी अधिक मूल्यवान होंगे। आपके सपनों का सार यही है, अब मुझे विदा दीजिए। विश्वास कीजिए कि यह सात दिनों में घटित हो जाएगा।"

ऐसा कह ऋषिवर ने राजा का दंडवत स्वीकार किया और प्रस्थान कर गए। राजा की आज्ञा पाकर ऋषि को दान-दक्षिणा देने हेतु दूत भी उधर गए पर लौटकर विस्मित स्वर में बोले, "उन्हें सोम मंदिर में अंदर जाते देखा लेकिन जब हम लोग मंदिर में प्रविष्ट हुए तो अन्दर कोई नहीं था। बस केवल एक उल्लू पंख हिलाते दिखा।" कभी-कभी देवतागण पृथ्वी पर इस विधि से आते हैं। ऋषि के विषय में यह सूचना पाकर राजा भी चकित हो गए। व्यथित राजा ने अपने सचिवों को आदेश दिया, "नित्य-प्रतिदिन कुछ नये भोग-प्रमोद की चीजें रचें जो कुँवर को लुभाकर रखें और द्वारों पर चौकसी दूनी की जाए।" पर होनी कैसे टलेगी ?

राजकुमार का पुनर्वहिर्गमण

कुँवर के मन में एक बार पुनः बाहर जाने एवं संसार देखने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो गई। "मैं जीवन प्रवाह देखना चाहता हूँ जो सुहावना प्रतीत होता हुआ दीखता है। क्या यह काल कहीं मरुभूमि में जाकर वहाँ तो प्रवेश नहीं कर जाता है ?" अतः पिता के पास जाकर विनयपूर्वक कहा, "यह नगर कैसा है मैं उसे यथावत देखना चाहता हूँ। उस दिन तो आपके आदेश को सारे नगर पर लागू कर दिया गया था जिससे हमारे मार्ग में कहीं दु:ख का कोई दृश्य न हो। मेरी प्रसन्नता के लिए हाट-बाट

में सभी जगह मंगल उत्सव हो रहे थे और सभी विवशतावश प्रसन्न थे। किन्तु मैं जान गया था कि वह उनकी दैनिक जीवनचर्या नहीं थी। मुदिता तथा प्रफुल्लता का विगत काल का वह दृश्य असत्य था। आपके नाते इस राज्य से मेरा भी कुछ सम्बन्ध है, इसलिए मुझे भी गली-गली की असली बातें जाननी चाहिए, उन दीन-दुखियों की दशा जाननी चाहिए जो जीवन में खोये हुए हैं। सामान्य जन रहन-सहन में कैसा दीखता है ? आपकी आज्ञा मिले तो मैं छद्म वेश धरकर एक बार फिर उन सभी का रहन-सहन मन भर देखूँ। अगर मन सुखी न हुआ तो कम से कम अनुभव तो बढ़ेगा। अगर आपका आदेश मिले तो नगर में मनमाने ढंग से घूमूँ।" बातें सुनकर फिर सचिवों के प्रति उन्मुख होकर राजा ने कहा, "संभव है इस बार कुँवर की मति कुछ फिर जाए। प्रबंध करें कि वे नगर देखने जायें और लौटकर मुझे बतायें कि उनका चित्त कैसा रहा।"

अगले दिन नृप की आज्ञा पा राजकुमार छंदक के संग द्वार से बाहर निकले। कुँवर ने व्यापारी का वेश धारण किया था और छंदक उनका मुनीम बना था। दोनों असीम भीड़ और अति जन कोलाहल से होकर पैदल चले। जनमानस की भीड़ में जा मिले, उन्हें कोई पहचान नहीं पाया। जब राजकुँवर ने सही-सही सुख-दुख देखा तो उनका मन भर आया। विचित्र गली थी और भारी कोलाहल उठ रहा था। मसाले धरे थे और अन्न तथा वस्त्र के व्यापारी बैठे थे। ग्राहक चीजों का मोलभाव करते दीखे। "इतनी नहीं, इतनी कीमत दो" कहकर दुकानदार जेब कतर रहे थे। "हटो, राह छोड़ो" यह आवाज सुनाई देती और बोझ से लदी बैलगाड़ियाँ चरमराती हुई चल रही थीं। गृहवधुएँ कुएं से कलश में जल भर सिर पर रख और बच्चे को गोद में लिए अधीर हुई घर जाती दिखीं। मिठाई की दुकानों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। ताना-बाना तान कर जुलाहे वस्त्र बना रहे थे। धुनिये ताँत को झनकार कर रूई धुन रहे थे। कहीं चक्की चल रही थी और उसके दरवाजे पर कुत्ते पूँछ हिला रहे थे।

कहीं शिल्पी कवच और तलवार बना रहे थे तो कहीं लुहार बैठकर फावड़े-गैंती बना रहे थे। गुरू के सामने अर्द्धचन्द्र आकार में बैठकर शुद्ध मंत्रोच्चारण करते हुए शिष्य वेद पढ़ रहे थे। लाल एवं अन्य रंगों में वस्त्रों को रंगकर और फटकार कर रंगरेज उन्हें धूप में पसार कर सुखा रहे थे। कहीं सिपाही ढाल बाँधे अपनी तलवार खड़का रहे थे और ऊँट वाले ऊँट पर चढ़ झूमते जा रहे थे। कहीं तेजस्वी ब्राह्मण और वीर क्षत्रिय सक्रिय दीखे तो वहीं कहीं पर कठिन श्रम से साँवले शरीर वाले शूद्र पसीने से तर थे। भाँति-भाँति के साँपों को अपने गले का हार बनाकर सपेरा सड़क के किनारे बैठकर लोगों को बुला रहा था। श्वेत कौड़ियों से सजाकर बीन को बजाते हुए फुँफकार कर रहे नागों को नचाकर दिखा रहा था। दुकानदार अपने-अपने व्यवसाय में लगे हुए थे। कहीं लोगों की भीड़ वधु को लाने के लिए पालकी लिए जा रही थी। साथ में चपल अश्व थे और नगाड़े, सिंघे बज रहे थे। कहीं बालाएं एवं गृहणियाँ देवताओं पर फूल चढ़ा रही थीं तो कोई अपने पति के विदेश से सकुशल वापस आने के लिए प्रार्थना करती नज़र आ रही थी। कहीं ठठेरे ठन-ठन करके पीतल पीटते जा रहे थे और नयी थाली, लोटा, कटोरा और चिरागदान बनाये जा रहे थे। इन दृश्यों का अवलोकन करते हुए वे दोनों आगे बढ़ते जा रहे थे।

व्याधिग्रस्त का देखना

नगर द्वार पार करते समय रास्ते के एक ओर से किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी, "मैं कैसे घर पहुँचू, मैं तो मर गया," कोई जोर-जोर से रो रहा था। उसी क्षण कुँवर को एक अभागा जीव दिखाई दिया। मिट्टी में व्याधिग्रस्त पड़ा वह अति तीव्र पीड़ा से बेचैन था। उसका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया था तथा ललाट पर पसीने की बूँदें थीं। उसके होठों पर असह्य व्यथा दिख रही थी और उसके हाथ काँप रहे थे। आँखें निकली जा रही थीं और वेदना सहना कठिन था। हाँफ-हाँफ कर हाथ का

भूमि पर सहारा देकर उठना चाहता था। आधा उठता था और फिर थर-थर काँपता हुआ गिर जाता था। बेबस पुकार उठा, "अरे ! कोई है ? मेरा हाथ पकड़ो।" सिद्धार्थ दौड़ पड़े, बाँहों का सहारा दिया। फिर उसे प्रेम से देखते हुए उसके सिर को अपने जांघ पर रख लिया और उससे प्रेमपूर्वक पूछने लगे, "बन्धु, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई ? क्या तुम उठ नहीं सकते ? कौन सा भारी दु:ख तुम पर आ पड़ा है ?" पुन: राजकुमार ने छन्दक की ओर प्रश्न करते हुए पूछा- "छंदक ! यह क्यों पड़ा कराह रहा है और विलाप कर रहा है ? हाँफ-हाँफ कर कुछ कहते-कहते रूक जाता है ?" सारथि ने कहा, "कुँवर ! यह मनुष्य रोग ग्रस्त है तथा इसके शरीर के तत्व अब धीरे-धीरे आपस में बिखर रहे हैं। इसके शरीर का रक्त जो कभी इसके अंग-अंग को शक्ति प्रदान किया करता था आज वही भीषण बाढ़ जैसा अनियंत्रित बह रहा है। उसका हृदय जो कभी उमंग से रह-रहकर उछाल भरता था वही अब फूटे ढोल की तरह दु:ख सह-सहकर धड़क रहा है। धनुष से खिसकी हुई रस्सी की तरह शरीर में व्याप्त सारी नसें ढीली पड़ गई हैं। शरीर की शक्ति छिन्न हो गई है और गर्दन नीचे की ओर झुक गई है। इस पीड़ित व्यक्ति के शरीर में जीवन-सौंदर्य और आनन्द सूख गया है और इस रोगी से जीवन रूठ गया है। सारा का सारा शरीर रह-रहकर ऐंठ रहा है, आँखें बाहर निकल रही हैं और बेचारा पीड़ित है। मरना चाह रहा है, पर मृत्यु आ नहीं रही है। भोग-व्याधि पूरी हो जाने पर ही वह आती है। जब जोड़-जोड़कर सारे बंधन उखड़ेंगे तब हे कुँवर ! इसके प्राण निकलेंगे। और तब यह क्षय रोग, इसे छोड़कर किसी और को जाकर पकड़ेगा। हे कुँवर ! आप दूर रहें ! अन्यथा यह रोग आपको भी जकड़ लेगा।" लेकिन कुँवर उसे लिए रहे और फिर इस प्रकार के वचन बोले, "क्या ऐसे ही और अनेक प्राणी पड़े हैं ?" सारथी ने कहा, "सभी यही गति पायेंगे अगर इसकी उम्र तक जीवित रह जायग। बीमारी कभी न कभी अवश्य ही सताती है और किसी न

किसी रूप में यह सब पर ही आती है। मूर्छा और उन्माद, वायु-विकार, कफ, पित्त, जूरी-ज्वर एवं फोड़ा-घाव, जिगर रोग, पेचिश, जलंधर (पेट बढ़ने की बीमारी) अन्य नाना प्रकार के रोगों से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। सभी जीव कष्ट भोगते हैं कोई बचता नहीं है। जगत में रक्त और मांस के सभी जीव रोगों से बँधे हुए हैं।" फिर कुमार ने जानना चाहा, "भाई! मुझे इतना बतलाना कि क्या यहाँ सारे दु:ख बिना बताये आते हैं ?" छंदक ने कहा- "ये दबे पाँव ऐसे आते हैं जैसे चुपके से आ विषधर अपना दाँत धँसाते हैं अथवा बीच झाड़ियों में जैसे बाघ घात लगाकर बैठा रहता है और मौका पाते ही शिकार पर टूट पड़ता है अथवा आकाश से गर्जन करती हुई बिजली गिरती है। कोई बच जाता है तो कोई क्षण भर में मर जाता है।" कुँवर ने प्रश्न किया, "तब तो सभी को ही भय लगता रहता होगा ?" सारथि ने शीश हिला कहा, "हाँ, इसमें क्या संशय है ?" कुँवर ने कहा, "तब तो कोई नहीं कह सकता कि आज सुख से सोता हूँ कल खुशी-खुशी उठूँगा।" "नहीं, कुँवर ! जग में यह कोई नहीं कह सकता। कोई नहीं जानता कि पल भर में क्या होगा ?" "पर यदि कोई यह दुस्सह भोग-ताप सह न सके या भोगते-भोगते जैसा यह है वैसा हो ले; चलती रहे साँस पर दिन-दिन अति जर्जर हो थक कर मुरझा जाये तो फिर कहाँ रूककर इसका अंत होगा ?" "मर जायेगा वह, कुँवर !" छंदक ने नि:संशय कहा। "किसी समय, किसी भाँति मृत्यु निश्चित ही आती है।"

मृत्यु का सत्य

तभी कुँवर ने वहीं भीड़ को रोते-चीत्कार करते सरिता तट की ओर जाते देखा। "राम नाम सत्य है" सभी रह-रहकर यही कहते और शीश नवा, इधर-उधर कहीं नहीं देखते, धीरे-धीरे नदी तट की ओर चले जा रहे थे। मृतक को रोते और बिलखते ढो रहे थे और परिजन, इष्ट मित्र एवं बंधुगण कलपते दिख रहे थे। बाँस की अर्थी जिस पर वह नर काठ समान मृतक दिख रहा था, कंधों पर उठाये सभी पाँव बढ़ाकर चलते जा

रहे थे। कोख सटी, आँखें पथराईं और बदन भयंकर था। 'राम-राम' कह लोग उसे नदी तट पर ले गये जहाँ नदी से कुछ दूरी पर चिता सजी थी। मृतक को उसी काठ शय्या पर लिटा दिया जैसे उसे अनन्त सुखकर निद्रा प्राप्त हो। आज उसे शीत ऋतु का क्लेश नहीं सता रहा है और लोग उसकी चिता के चारों ओर आग लगा रहे हैं। शव को घेर धीरे-धीरे वह ज्वाला दहक उठती है और लपटें लंबी जीभ निकालकर मांस का भोजन बना रही हैं। पका हुआ चर्म सनसना रहा है और एक-एक कर सारे बंधन चटकते जा रहे हैं। अब वह मृत तन राख में परिणत हो चुका है ! केवल भस्म बची है जो दिखाई दे रही है। श्वेत अस्थि के बचे हुए खंड, जीवन में यही शेष बचा है। कुँवर ने यह सब देख प्रश्न किया, "क्या सभी की यही गति है ?" छंदक बोला, "सभी के अंत की यही नियति है। जिसे 'काँव-काँव' कर लड़कर खाने के बाद भी कौवे नहीं अघाते थे, उसके जलने के बाद इतना अल्प अवशेष बचा है। जीवन में अनुराग था, इंसान खाता, पीता, हँसता था। वात का झोंका लग गया, तन में आग लग गई, सर्प ने आकर डँस लिया, शत्रु की तलवार आकर धँस गई, ठोकर खाकर गिर गया या फिर भँवर में ही फँस गया। अंततः चिता की आग ही मनुष्य की धरोहर है। ज्वाला से शव धधक उठता है। अग्नि की ताप से चमड़ा जलने लगता है। मृत्यु सभी अंगों को निश्चल कर देती है जैसे ईंट का गिरना जिससे प्राण का अंत हो जाता है और प्राणी तुरंत मर जाता है। अब उसको इस जग में न कोई क्षुधा है और न कोई सुख-दुख। मुख चुंबन और शरीर का लू लग जाना सभी कुछ समाप्त हो गया है। अपने ही शरीर के पके मांस की गंध अब कहीं नहीं सूंघता और न चंदन, अगर या धूप की गंध उसे पहुँचती है। स्वाद ज्ञान, रस ज्ञान सभी समाप्त हो गए। श्रवण-शक्ति नष्ट हो गई और आँखों में ज्योति नहीं रही। जिनसे उसका नेह था वे सभी नर-नारी बिलखते हैं। रक्त मांस के जीवन की, सब की यही गति है। भला और बुरा, ऊँच और नीच की यही नियति है। शास्त्र कहते हैं कि जीव मरकर फिर जन्म पाता है। नया देह कहाँ धारण करेगा

कोई नहीं बतलाता है।"

आँखों में आँसू भर आए, दया से मन पसीज गया। कुँवर ने आकाश की ओर दृष्टि उठाकर देखा और सृष्टि पर दिव्य दयामय दृष्टि गड़ाये रहे। नभ से भू, भू से नभ और इस प्रकार चारों ओर निहारा, मानो सारा नभ मंडल छान रहे हों। वह झलक पाने के लिए उनकी दृष्टि दूर-दूर तक गई जिससे सृष्टि को आज दुखों से त्राण मिले। प्रेम-प्रभा से आशा के आँगन में ज्योति छा गई। "अरे ! यह जगत तो दुःख का झूला है," कहते हुए अधीर होकर पुकारा, "रक्त, मांस के ये बेचारे सारे ज्ञात-अज्ञात जीव काल क्लेश के जाल में फँसे हुए हैं। मैं मृत्यु लोक की भारी पीड़ा देख रहा हूँ और इसके सारे सुख-वैभव की असारता भी देख रहा हूँ। सुंदर से सुंदर वस्तु धोखा दे जाती है और बुरी से बुरी वस्तु भी अनोखा ताप। सुख पीछे दुःख और अनंतर संयोग-वियोग, यौवन पीछे बुढ़ापा और जन्म-जीवन सभी नश्वर हैं। मरने पर फिर पता नहीं कैसे-कैसे जन्म प्राप्त होते हैं और यही चक्र सभी को अनजाने पथ पर नाथे रहता है और झूठे आनंदों में भरमाता रहता है। जीवन के वे सभी संताप जरा भी असत्य नहीं हैं। मुझे भी यह भ्रांति जाल भ्रमित करना चाह रहा है जिससे मुझे मेरा जीवन परम सुहावना लगता रहे। मुझे जीवन सरिता प्रवाह सा सुंदर लग रहा है जो सुख-शांति सहित निरंतर बहता हुआ दिख रहा है। पर अब मैंने उस धारा के हर हिलोर को देख लिया है जो नदी के किनारों से जा टकरा उछलती जाती है। निर्मल जल अंततः परम भयावह खारे, कड़वे समुद्र में समा जाता है। मेरी आँखों पर जो पर्दा पड़ा रहा, वह सरक गया। मैं भी वैसा ही हूँ, जैसे मेरे अनेक भ्रातृजन हैं जो अपने-अपने देवों को चीख-चीखकर, आर्तभाव से पुकारते रहते हैं पर उनकी कोई नहीं सुनता और हृदय हार जाते हैं। किंतु कोई उपाय तो अवश्य होगा जो उनके, मेरे और सभी के दुःख हरेगा। मेरे भाई और मेरी बहनें सामर्थ्यहीन देव से सहायता चाहती हैं पर वे देवतागण स्वयं तुच्छ हैं; वे दीन-दुखियों की मदद कैसे

कर सकेंगे ? अगर सर्वशक्तिमान सृष्टि को दुखकारी रखता है तो वह करुणामय नहीं है, न सुखकारी और न देवल प्रवर और अगर वह सर्वशक्तिमान नहीं है तो फिर वह ईश्वर नहीं है। बस, छंदक ! बहुत देखा, अब और देखने की आवश्यकता नहीं रह गई है।"

जब नृप ने यह बात सुनी तो चित्त में घोर चिंता छा गई। उन्होंने हर फाटक पँर दुगनी, तिगुनी चौकसी बैठा दी। राजा बोले, "जब तक स्वप्न घटित होने के दिन बीत न जाएँ तब तक कोई बाहर-भीतर नहीं आने-जाने पाए।"

चतुर्थ सर्ग
महाप्रयाण का आगमन

महाप्रयाण, महाभिनिष्क्रमण का समय आ गया। युगों-युगों की अनवरत प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुईं । वह शुभ मुहुर्त भी आ पहुँचा जब राजकुमार सिद्धार्थ को अपना घर द्वार, राजमहल, पिता, पत्नी, पुत्र, राजपाट एवं सर्वस्व सुख त्यागकर घनघोर वन की ओर प्रस्थान करना था। स्वर्ण महल में शोक छा गया, राजा दु:खी हो गए, राज्य मायूस हो गया, प्रजा उदास हो गई यद्यपि राजकुमार के इस महाप्रयाण से समस्त प्राणियों के भव-बंधन से मुक्ति का एक सर्वथा नूतन मार्ग प्रशस्त होने की आशा दृढ़ हो गई थी।

चैत्र पूर्णिमा की रात्रि थी । चंद्रमा अति निर्मल एवं उज्जवल आभा बिखेर रहा था और धरा बहुत ही मनोरम लग रही थी । सुंदर मुस्कान वाली चांदनी सर्वत्र खिली हुई थी । पवन मंद-मंद बह रहा था और आम के पेड़ों में लदे हुए आम, उसकी टहनियाँ और उसके गुच्छे हवा के मंद-मंद झोंके खा हिलोरे ले रहे थे। टप-टप की आवाज देता हुआ मधु धरती पर गिर रहा था और स्पष्ट सुनाई दे रहा था। अशोक के फूल हवा को सुगंधित बना रहे थे। रामनवमी का उत्सव बीत चुका था पर उसकी सजावट अभी भी नगर की शोभा बढ़ा रही थी। विश्राम भवन पर मृदुल चाँदनी अपनी आभा बिखेर रही थी एवं सुगंधित फूल जड़ित नक्षत्रों जैसे दिखाई दे रहे थे। विश्राम भवन पर पड़ने वाली चाँदनी युक्त श्वेत ओस की बूँदें हिमालय की बर्फीली चोटियों के समान मन को लुभा रही थीं । पहाड़ों से चलने वाली मंद हवाएँ मन को मदमस्त कर रही थीं। पर्वत पर चमकता हुआ चन्द्रमा पर्वत की चोटी पर चढ़कर अम्बर पथ पर जाता हुआ दीख रहा था, सोई हुई धरती को प्रकाशित कर रहा था और रोहिणी के जल को हिलोरता जा रहा था। रसधाम के मुंडेरों पर वह अपनी प्रभा बिखेर रहा था जहाँ कोई भी, कहीं भी चलता-फिरता नजर नहीं आ रहा

था। द्वार पर यदा-कदा पहरेदारों की आवाज सुनाई पड़ती एवं अंगन की धुन के साथ तोरण वाद्य भी बज उठते थे। इसके उपरान्त भूमि पर पुनः निःस्तब्धता छा जाती थी। फिर चारों तरफ केवल झींगुर की आवाज सुनाई पड़ती थी।

रसधाम आवास के लिए पूर्णतः सुसज्जित है। भवन की जालियों से छनकर आती हुई चाँदनी की आभा सीप एवं संगमरमर से निर्मित दीवारों एवं फर्श को प्रकाशित कर रही है। स्वर्णिम स्तंभों पर रखे सुगंध युक्त दीपों से पूरा भवन जगमगा रहा है। उनसे रंग-बिरंगी किरणें निकल रही हैं। द्वार पर चित्रकारी युक्त चंदन के स्वर्णिम चौखट लगे हैं एवं उनसे बैगनी रंग की आभा निकल रही है। द्वार की तीन सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद कुँवर का अनोखा एवं मनोरम आवास है। भवन के अंदर सोई हुई सुन्दरियों पर चन्द्रमा की किरणें पड़ रही हैं एवं विश्राम भवन स्वर्ग में स्थित देवताओं की विश्रामस्थली की तरह लग रहा है। कुमार के विलास भवन में सभी सोई हुई रूपसी युवतियों का रूप-सौंदर्य अनुपम है। जिस सुन्दरी पर भी दृष्टि पड़ती है, उसके मुक्त सौंदर्य की मनोरम छटा को देखकर मन यह कह उठता है "यही सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है।" नेत्र रूप लावण्य से परिपूर्ण मदमस्त नयनों वाली सुन्दर युवती को निद्रित अवस्था में तबतक देखते रहते हैं जबतक वे नेत्र बगल में सोई हुई युवती पर नहीं पड़ जाते जैसे रत्न-हाट में गया व्यक्ति एक मणि को तब तक देखता रहता है जब तक उसकी दृष्टि दूसरी मणि पर न पड़ जाए। सुन्दरियाँ अपने सुंदर शरीर के प्रति बेसुध होकर सो रही हैं । उनके मृदुल होंठ अधखुले हैं। उनके चिकने, मुलायम, काले लंबे केशों में कुसुम-दाम के फूल लगे हैं जो उनके बालों की शोभा बढ़ा रहे हैं। दिन-भर के हास-परिहास से शिथिल ये सुंदरियाँ अपने पैरों को पसारकर ऐसे बेसुध हो सो रही हैं जैसे कोयल दिन-भर रसीले गीतों को गा अंततः थककर पंखों के बीच सिर झुकाकर तब तक सोई रहती है जब तक कि प्रभात का आगमन

न हो जाये। उनके वस्त्र गहरे उच्छवास के कारण उरोजों से हट गये हैं एवं हाथ ढीले पड़े हुए हैं। मुखमंडल शांत है, भौंहें विशाल एवं टेढ़ी तथा बरौनियाँ काली हैं। अधखुले होंठों के कारण उनके दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की तरह चमक रही हैं। उनकी कलाइयाँ गोल हैं एवं उनके छोटे-छोटे पाँवों में सुंदर पैजनियाँ सुशोभित हैं। उनका कोई भी अंग हिलने से पैजनियों के खनकने की आवाज आती है जिससे उनका वह सुखद स्वप्न टूट जाता है जिसमें वे राजकुमार से कुछ सुंदर उपहार प्राप्त कर रही थीं। कुछ युवतियाँ वीणा बजाते-बजाते ही सो गईं। इसलिए उनकी अंगुलियाँ वीणा के तारों में ही फँसी पड़ी हैं एवं वीणा उनके कपोलों से सटा हुआ है। अन्य सुंदरियाँ मृग शावकों को गोदी में लेकर सो गई हैं और मृग शावक भी उनके हाथों में रखे कुसुम को सूँघते हुए सोये पड़े हैं। इस तरह कुतरे हुए कुसुम एवं हिरण के अधर तले लिपटा कुसुम कामिनियों के हाथों की शोभा बढ़ा रहा है। कुछ सखियाँ आपस में गले से गला मिलाकर सुगंधित मोगरे की माला बनाते-बनाते ही सो गई हैं। उनके रूप-सौन्दर्य का प्रेम-पाश इतना लुभावना है कि उनको देखते-देखते अंतरात्मा नहीं थकती। कुछ सुन्दरियाँ माणक, मरकत एवं मुक्ता की कण्ठमाला बनाते-बनाते ही सो गई हैं। सूत में पिरोई गई माला उनकी कलाइयों में उलझकर रह गईं हैं जिससे बहुरंगी प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। गंगा-गोमती नामक सुन्दर नवयुवतियाँ दरवाजे के दोनों तरफ़ सो रही हैं। उपवन के समीप बहती नदी का कलनाद सुनते-सुनते कुछ सुन्दरियाँ कोमल बिछौनों पर पास-पास सोई हैं और उस सुखद प्रकाश की अनुभूति कर रही हैं जिसे प्राप्त करने से परमानन्द का सुख मिलता है।

कुँवर के कक्ष के द्वार पर लगे परदे उजाला पाकर बिजली की तरह चमक रहे हैं। कुँवर एवं यशोधरा के कक्ष के भीतर की शोभा अद्वितीय है। शय्या रेशमी एवं मुलायम है जिस पर बैठने से ऐसा लगता है मानो बहुत सारे कमल के फूलों से सेज बनाई गई हो। दीवारों पर

सिंहल देश के प्रसिद्ध सीपों से सुसज्जित मुक्ता की श्रेणियाँ लगाई गई हैं। संगमरमर से बनी छत पर सुन्दर नक्काशी की गई है एवं उनमें रंग-बिरंग के नग जड़े हुए हैं। अनेक रंगों के बने बेलबूटे मन को मोह रहे हैं तथा झरोखों की चित्रांकित जालियाँ कक्ष की शोभा बढ़ा रही हैं। झरोखों से चमेली की खुशबू आ रही है एवं उनके साथ-साथ चन्द्रमा की किरणें तथा शीतल हवाएं भी प्रवेश कर रही हैं।

यशोधरा का दु:स्वप्न

यशोधरा अर्द्धसुप्तावस्था में सिद्धार्थ के बगल से शय्या से उठीं। उनकी चादर कमर तक गिरी हुई थी। वे अपनी दोनों हथेलियों से चेहरे को ढंके हुए थीं। उनकी छाती जोर-जोर से धड़क रही थी और नयनों से आँसू गिर रहे थे। उन्होंने अपने होंठों से तीन बार सिद्धार्थ के हाथ चूमे और तीसरे चुम्बन पर कराह उठीं, "उठिए, मेरे स्वामी ! मुझे अपनी वाणी की सांत्वना दीजिए।" तुरंत उठते हुए सिद्धार्थ ने पूछा, "हे मेरे जीवन साथी ! क्या कष्ट है ?" सिद्धार्थ की बात सुनकर भी कुँवरी का मन शांत नहीं हुआ। वे फिर भी रोती रहीं और बोलीं, "हाय, मेरे राजकुमार ! बहुत आनंद के साथ मेरी आँख लग गई थी। आपके बच्चे की माँ बनने की बात ने मेरी खुशी को और भी बढ़ा दिया है लेकिन नींद में मैंने तीन भयावह सपने देखे जिनके बारे में सोच सोचकर दिल अभी भी काँप उठता है।" तब उन्होंने सपनों के विषय में बताया।

पहले सपने में मैंने नगर में चलते हुए एक श्वेत साँड़, चारागाह का स्वामी देखा जिसके सींग फैले हुए थे, उसके माथे पर सर्पों की नागमणि की भाँति एक चमकता हुआ रत्न प्रकाश फैला रहा था। मानो कोई तारा धरती पर उतर आया हो। वह साँड़ गलियों से होता हुआ धीरे-धीरे नगर द्वार की ओर बढ़ रहा था तथा उसे कोई रोक नहीं पा रहा था। इन्द्र के मंदिर के पास से एक ऊँची आवाज आई, "अगर आप इसे रोक

नहीं सके तो आपके नगर की मर्यादा जाती रहेगी।" फिर भी उसे कोई रोक नहीं सका। तब मैंने प्रलाप किया और अपने दोनों हाथों से उसके गले लग उसकी गर्दन पकड़ कर उसे रोकने की चेष्टा की। मैंने यह भी आग्रह किया कि नगर के सब द्वार बंद कर दिए जायें, लेकिन बैलों का वह राजा गरजा और अपनी शिखा छुड़ाते हुए मेरी पकड़ से छूट गया और अवरोधों को तोड़ते हुए, पहरेदारों को रौंदते हुए निकल गया।

दूसरा दुखदायी आश्चर्यजनक स्वप्न था: चार देवतागण, चमकते हुए आँखों वाले इतने सुंदर मानो वे संसार के प्रतिशासक हों, जो सुमेरू पर्वत पर विराजते हैं, स्वर्ग से अनगिनत परिजनों के साथ आकाश से उतरे एवं तुरंत नगर में प्रवेश कर गए। उन्हीं के सामने मैंने इन्द्र के सुनहरे झंडे को द्वार पर फड़फड़ाते और गिरते हुए देखा और यह भी देखा कि उसकी जगह पर एक तेजस्वी ध्वज खड़ा हो गया है जिसकी मणि से जटित तहें धधकती अग्नि की तरह चमक रही थीं। ध्वज के ये मणि चाँदी के धागों से टाँके गए थे। मणि की किरणों से नए ज्ञान का उपदेश और प्रभावकारी शिक्षा निकल रही थी जिसके संदेश सभी प्राणियों को प्रसन्न कर रहे थे। पूरब से सूर्योदय के समय हवा बही जिसने झंडे को फैला दिया ताकि सभी प्राणी उसके संदेश को ठीक से पढ़ सकें और विचित्र प्रकार के पुष्पों की, जो पता नहीं कहाँ से आए थे, बरसात होने लगी, ऐसे पुष्प जो हमारे बागीचों में नहीं दीखते हैं। इन दोनों स्वप्नों का वृत्तान्त सुनकर राजकुमार ने कहा, "हे प्रिये ! यह सब कुछ देखा जाना शुभ था।" "हाँ स्वामी", राजकुमारी ने कहा, "यह देखना अच्छा लगा," पर इसका अंत एक भयातुर आवाज से हुई जो कह रही थी, "समय निकट है ! समय निकट है !"

तब तीसरा स्वप्न आया, जब मैंने आपको अपने बगल में पलंग पर देखना चाहा। हे प्रिय स्वामी, ओह ! हमारे बिस्तर पर एक तकिया पड़ा था, आप नहीं थे, सिर्फ आपके वस्त्र थे। मैं बिस्तर से उठी तो देखा कि

मोती की माला जिसे मैंने गले में धारण कर रखा था वह जहरीले साँप में परिणत हो गया, मेरे घुँघरू बिखर गए, मेरे बालों के चमेली के फूल मुरझा धूल में मिल गए। हमारी सुहागरात की शय्या धरती में समा गई और किसी ने पर्दे को नीचे गिरा दिया। तब बहुत दूर से मैंने उस श्वेत साँड़ की एक बार फिर आवाज सुनी और बहुत दूर आकाश में उस कसीदायुक्त फड़फड़ाते झंडे को देखा और एक बार फिर वही आवाज सुनी, 'समय आ गया है !', 'समय आ गया है !' और एक भयानक चीख के साथ मैं उठ गई जो अब भी मेरी आत्मा को हिला देती है। हे राजन! इन दु:स्वप्नों का क्या अर्थ हो सकता है सिवाय इसके कि मेरी मृत्यु हो जाती है या - मेरी मृत्यु से भी अधिक बुरा - आप मुझे त्याग देते हैं या आपकी मृत्यु हो जाती है ?

सिद्धार्थ का चेहरा डूबते हुए सूरज की अन्तिम मुस्कान की तरह देदीप्यमान था। वे अपनी रोती हुई पत्नी की ओर झुके और सांत्वना देते हुए कहा, "शांत होइए, प्रिये !" उन्होंने समझाया, "शाश्वत प्रेम से ही शांति मिलती है। संभव है आपके स्वप्न आने वाली घटनाओं का आभास दे रहे हों और उनकी भविष्यवाणी कर रहे हों क्योंकि मेरे गृहत्याग की बात पर देवतागण भी अपने-अपने आसनों पर हिल गए हैं। संपूर्ण संसार जानता और समझता है कि आज बचाव का कोई मार्ग नहीं है। फिर भी संभव है कि मुक्ति का कोई न कोई मार्ग हो। जैसा भी आपके और मेरे साथ घटित हो, आप इतना सुनिश्चिन्त होवें कि मैं यशोधरा से सबसे अधिक, अगाध प्रेम करता था, करता हूँ और करता रहूँगा। आप जानती हैं कि किस प्रकार मैं इस उदास और दुखी संसार को बचाने के लिए दिन-रात विचारमग्न हूँ क्योंकि मैंने इस संसार के दु:ख और तड़प को देखा है और जब भी समय आएगा, तब वही होगा जो होना है। अब आप एक बात और समझें। अगर मेरी आत्मा अज्ञात लोगों के लिए तड़प रही है और यदि मैं उन सभी लोगों के दु:ख से दु:खी हूँ जिन्हें मैं जानता तक

नहीं और जिनका दुःख मेरा अपना, निजी नहीं है, तब आप ही स्वयं सोचिए कि मेरी ऊँची उड़ान वाली तड़प भरी चाह उन लोगों के लिए क्यों और कैसे नहीं तड़पेगी और कितनी तड़पेगी जिन्होंने मेरे जीवन में मेरे साथ भागीदारी की है और इसे सुमधुर बनाया है ? अतः हे प्रिये ! सर्वप्रिय, भद्रे, सर्वश्रेष्ठ और मेरे सबसे निकटतम मित्र ! मेरे होने वाले बच्चे की माँ ! आपके शरीर में संतान की सुंदर आशा लिए मेरा शरीर समाहित है। जब मेरी आत्मा जल और थल पर विराजमान मानव को कष्ट से त्राण दिलाने के लिए व्यग्रता से दया के साथ विचरती है, जैसे दूर-दूर तक उड़ता हुआ कबूतर प्रेम के कारण प्रेम से ओतप्रोत प्रसन्न मन से अपने घोंसले में स्थित अपने चूजों के पास आता है, तब आप तो उन समस्त प्राणियों से भी ऊपर, मेरे लिए सर्वप्रिय हैं। अतः जो कुछ भी होगा भले के लिए ही होगा। चलिए, कुछ भी घटित हो या आ पड़े, याद करना उस ईश्वरीय साँड़ को जिसने डकार लगाई थी और उस आभूषित झंडे को, जिसकी तहें आपके स्वप्न में सीधी होकर लहरा रही थीं। एक और बात के बारे में आप सुनिश्चिंत रहें, मैंने हमेशा आपको सबसे अधिक प्यार किया है और हमेशा आपको हृदय से सर्वाधिक प्यार करता रहूँगा। जिसकी मैं सभी के लिए तलाश करूँगा, उसे सबसे अधिक आपके लिए खोजूँगा। अब आप शांत होवें और अगर आप पर दुःख का पहाड़ गिर भी जाता है तब भी इस विश्वास से संतोष रखें कि हमारे दुःखों के उपचार हेतु संसार में शांति का कोई मार्ग कहीं न कहीं अवश्य ही होगा। मेरे हृदय से निकले शब्दों को हृदय की गहराई से सुनिए। आप ही वह सुन सकती हैं जो दूसरे कभी भी नहीं सुन सकेंगे क्योंकि आप मुझसे सबसे निकट हैं। मैं जो कुछ भी प्राप्त करूँगा उस पर आपका सबसे अधिक अधिकार होगा। अतः उस मार्ग की खोज अवश्य करनी चाहिए। अब राजकुमारी ! आप चिंता न करें और विश्राम करें, मैं जरा उठता हूँ और इस रात्रि के आकाश व तारों को देखूँगा।"

महाभिनिष्क्रमण

आँसुओं से भीगे नेत्रों के साथ यशोधरा बिस्तर पर लेट गई, लेकिन लेटते हुए फिर आह भरी क्योंकि वह दृश्य एक बार फिर दिख गया, "वह समय ! वह समय आ गया है !" उधर सिद्धार्थ मुड़े और खिड़की से आकाश की ओर देखा। चन्द्र और कर्क राशि का योग बना हुआ था। तारे उसी क्रम में चमकते हुए विद्यमान थे जिसके विषय में बहुत पहले भविष्यवाणी की गई थी मानो एक पंक्ति में फैले हुए वे कह रहे हों- "यही वह रात्रि है सिद्धार्थ ! तुम कोई एक मार्ग चुनो - ऐश्वर्य का मार्ग या परोपकारिता का मार्ग। महाराजा के रूप में राज करने का निर्णय या भिखारी की तरह अकेले भटकने का, बिना मुकुट, तख्त-ताज के, गृहविहीन, ताकि संसार की मदद कर सको।" साथ ही विषाद की फुसफुसाहट के साथ उनके कानों में एक बार फिर वह चेतावनी भरा गीत सुनाई दिया जिसे देवताओं ने सितार के माध्यम से अदृश्य रूप से गाया था। निश्चय ही देवतागण उस स्थान पर अदृश्य रूप में विराजमान थे जहाँ सिद्धार्थ खड़े थे और उन पर ध्यान गड़ाये हुए थे। उधर सिद्धार्थ स्वयं चमकते हुए तारों को देख रहे थे, "मैं जाऊँगा," उन्होंने कहा, समय आ गया है ! प्रिय यशोधरा के कोमल होंठ ! हे मेरे सोने वाले मित्र ! चाँद-तारे मुझे उस ओर बुला रहे हैं जहाँ से संसार की रक्षा होगी पर मेरा यह निर्णय हमें सदा के लिए अलग कर देगा। मैं अपने भाग्य का लेखा चमकते हुए आकाश पर स्पष्ट लिखा हुआ देख रहा हूँ। मैं इसी पल के लिए इस धरती पर आया हूँ, अभी तक की बीती सारी रातें, सारे दिन मुझे इस क्षण तक लाये हैं और अब मुझे निर्णय लेना है। मुझे वह मुकुट नहीं चाहिए जो शायद मेरा है। मैं उन प्रदेशों का त्याग करता हूँ जो मेरी चमचमाती तलवार द्वारा मेरे विश्व विजय अभियान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे रथ के पहिए एक विजय से प्रारंभ होकर दूसरी विजय तक कदापि रक्त रंजित नहीं घूमेंगे, जब तक धरती पर मेरा नाम लहू से पूरी तरह नहीं

लिख दिया जाता है। मैं धरती और इसके रास्तों पर धीरज धर, कलंक रहित पैरों से चलूँगा। इसकी धूलि को अपना बिछावन बनाऊँगा, यही निर्जन धरती मेरा निवास स्थान होगी और इसके तुच्छ प्राणी मेरे मित्र होंगे। जाति से बाहर निर्वासित अछूत लोगों के वस्त्र से अधिक मूल्यवान वस्त्र नहीं पहनूँगा। किसी अन्य अन्न को न खाकर, सिर्फ भिक्षाटन से लोगों की इच्छा से दान स्वरूप प्राप्त भोजन ग्रहण करूँगा और इससे अधिक तड़क-भड़क से न रहूँगा। गुफा की मद्धिम रोशनी या जंगलझाड़ की रोशनी में ही मेरी शरणस्थली होगी । मैं यही करूँगा क्योंकि सभी जीवंत और जीवित प्राणियों का विलाप मेरी कानों तक आ रहा है। आज मेरी पूरी आत्मा संसार के दु:ख से उठने वाली बीमारी की दया से ओत-प्रोत है। मैं संपूर्ण त्याग तथा कठोर प्रयत्न कर अगर इसका इलाज खोजा जा सके तो इस बीमारी का इलाज खोजूँगा। क्या हमारे उच्च या निम्न कोटि के देवताओं के पास इतनी पर्याप्त शक्ति या दया विद्यमान है ? उन्हें किसने देखा है- किसने उनके दर्शन किए हैं ? उन्होंने उनकी पूजा करने वालों की मदद करने के लिए क्या किया है ? उन्होंने इंसान की प्रार्थना के बदले उसे फल के रूप में क्या-क्या दिया है ? क्या उन्होंने अन्न और तेल के चढ़ावे के दसवें भाग के बराबर भी प्रसाद दिया है ? मंत्रोच्चारण कर रहे पंडितों द्वारा चीखते हुए पशुओं के बलिदान से, उन्हें भोजन कराने से, विष्णु, शिव, सूर्य का नाम लेने से, जो किसी की रक्षा नहीं करते और न कर सकते हैं एवं न नाम लेने योग्य हैं, उनकी प्रार्थना करने से आजतक क्या प्राप्त हुआ ? पूजा स्थलों में की जाने वाली धार्मिक प्रार्थना की चापलूसी से किसी का दु:ख कम हो पाया ? भय, जो दिन-ब-दिन धूयें की तरह विशाल होता जाता है, उससे क्या कोई बच पाया ? क्या प्रेम के मिलन और फिर बिछुड़न के डंक से, उग्र ज्वर और कम्प ज्वर के कम्पन से, धीरे, मन्द गति से मुरझाये हुए बुढ़ापे की ओर प्रस्थान करने से, भयावह काली मृत्यु और उससे परे जो प्रतीक्षा कर रहा है, क्या इनसे मेरा कोई भाई बच पाया ? घूमता हुआ पहिया जब ऊपर

आ जाता है, नई जिंदगी नए कष्टों को जन्म दे देती है। नई पीढ़ी नई इच्छाओं से त्रस्त होती है जिनका अंत फिर पुराने मजाक में होता है। क्या मेरी एक भी प्यारी बहना ने पाया है, उपवास का फल या भजन-स्तुति से लाभ या क्या कभी प्रसव-काल में दर्द थोड़ा भी कम हुआ है, श्वेत दही और तुलसी-पत्र के चढ़ावे से ? नहीं ! संभव है कुछ देवतागण अच्छे हों, संभव है कुछ देवतागण फल देने में बुरे हों पर लोगों का भला करने में सभी कमजोर हैं। दयावान और दयाहीन दोनों इंसान हैं। अतः परिवर्तन के चक्र से बंधे हुए हैं। हमारे शास्त्र इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं कि एक बार, कहीं भी, कैसे भी अगर जीवन प्रारंभ हो गया तो फिर जीवन-चक्र चलता ही जाता है: धूल के कण, कीड़ा, रेंगनेवाला जन्तु, मछली, चिड़िया, जानवर, मानव, दैत्य, देव, देवतागण और फिर मिट्टी, मिट्टी का कण और इस प्रकार हम सभी से रिश्ते में जुड़े हुए हैं। इसलिए अगर मनुष्य को उसके शाप से बचा पाऊँगा तो सारा का सारा संसार अज्ञान और भय से मुक्ति पा सकता है। अज्ञान की छाया है उदासीनता और भय एवं निर्दयता इसके बर्बर विनोद हैं। जीवन के कष्टों से त्राण की विधि अवश्य होगी। शरण लेने का स्थान अवश्य होगा। जाड़े की बर्फीली, ठंडी हवाओं से मनुष्य मरते रहे होंगे जब तक किसी ने उसी बर्फ के नीचे छिपे हुए चकमक पत्थर से आग निकाल कर ठंड को मात न दी और चैली के अंदर संचित आग जलाने वाली लाल चिंगारी को प्रकट नहीं किया। लोग भेड़िये की तरह लालचपूर्वक मांस तब तक खाते रहे जब तक लोगों ने अन्न उगाना प्रारंभ नहीं कर दिया। मनुष्य बड़बड़ाता रहा और कुछ भी स्पष्ट बोलकर अपने आप को व्यक्त नहीं कर पा रहा था जब तक किसी ने वाणी की खोज नहीं कर ली और धीरजपूर्वक अंगुलियों ने अक्षरों का आविष्कार नहीं कर लिया।

जो कुछ भी सुंदर उपहार आज मेरे भाइयों को प्राप्त है, यह खोज, संघर्ष और प्रेममय त्याग से ही आया है। अतः अगर एक व्यक्ति महान और

भाग्यशाली है, धनी है और अगर उसे स्वास्थ्य और समृद्धि का सुख प्राप्त है, यदि जन्म से ही उसके भाग्य में राज करना लिखा है तथा संभव है वह राज करना चाहे, राजाओं का राजा, महाराजा बनना चाहे, संभव है कोई जीवन में प्रतिदिन परिश्रम करके और सांसारिक दायित्व निभाने पर भी नहीं थकता और सुबह की ताजगी के समान प्रसन्न रहता है; प्रेम रूपी भोजन अधिक प्राप्त होने की अधिकता के कारण भी अभी उसमें अरुचि पैदा नहीं हो पाई है और वह अभी भी प्रेम का भूखा है, यदि अभी वह श्रम से थका हुआ नहीं है और चेहरे पर झुर्रियाँ नहीं आई हैं, उदासीन महात्मा की तरह अपने प्रताप की महिमा और ईश्वरीय कृपा से प्रसन्न है, संसार की बुराइयाँ उसमें घुलमिल जाती हैं तो ऐसे व्यक्ति को स्वतंत्रता है कि वह अपनी इच्छानुसार धरती की सर्वश्रेष्ठ चीजों को प्राप्त करे और अगर उसे जीवन इतना प्रिय लगता है तो जीवन जीकर ही सन्तुष्टि महसूस करे। पर दूसरी ओर देखें तो मैं भी एक साधारण व्यक्ति हूँ जिसे कोई सांसारिक दर्द नहीं है, कोई कमी नहीं है, कोई सांसारिक दुःख दुःखी नहीं करता है सिवाय उनके दुःख के जो मेरे रिश्तेदार नहीं हैं पर जो खून और मानवता के रिश्ते मात्र से मुझसे जुड़े हैं तथा उनमें और मुझमें रक्त के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं है। पर मेरे पास देने के लिए इतना कुछ है, मानव मात्र के प्रति प्रेम के कारण ही सभी कुछ त्याग दूँगा और उसके बाद अपने आप को सत्य की खोज में समर्पित कर दूँगा। मुझे मुक्ति के रहस्य को निचोड़-मरोड़कर कहीं से भी, आकाश या पाताल से, निकालना है भले ही उसे स्वर्ग या नरक से छीनकर लाना पड़े, जहाँ वह धोखा देकर ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से दबकर छुपा हुआ हो या सभी के इर्द-गिर्द हवा में घूम रहा हो। मैं यह खोज करूँगा और अवश्य ही उस सत्य को पाताल से या जहाँ कहीं भी छुपा हुआ हो वहाँ से खोजकर सभी के कल्याण के लिए लाऊँगा।

निश्चय ही अंत में, कहीं न कहीं दूर, कभी न कभी, मेरी गहरी

तलाशती आँखों के लिए पर्दा उठेगा, इस जिज्ञासु के दर्द भरे पैरों के लिए रास्ता खुलेगा, वह मार्ग और लक्ष्य जीता जाएगा जिसके लिए मैं संसार का त्याग कर रहा हूँ और इस प्रकार मृत्यु पायेगी कि अंततः इस त्यागी ने स्वयं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। मैं यही करूँगा, मुझे अपने इस राज्य का त्याग करना है क्योंकि मुझे अपना राज्य और अपनी प्रजा को बचाना है जिन्हें मैं हृदय से प्यार करता हूँ। मेरा हृदय उन सभी दुःखी लोगों के हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ धड़कता है जो ज्ञात और अज्ञात रूप से मेरे अपने हैं। मेरे इस त्याग के द्वारा, जिसे मैं अब ग्रहण करता हूँ, वे करोड़ों लोग मेरे और अधिक प्रिय हो जायेंगे। हे पुकार रहे तारेगण ! हे शोकाकुल धरती ! आप साक्षी हों ! मैं समस्त धरती और समस्त प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अपनी युवावस्था, अपना सिंहासन, अपनी खुशियाँ, अपने स्वर्णिम दिन और रातें, अपना सुखी राजमहल और सर्वाधिक प्रिय अपनी अर्धांगिनी यशोधरा की बाँहों का, जिसका त्याग सभी की तुलना में सबसे कठिन है, त्याग करता हूँ। लेकिन मैं संसार की रक्षा के साथ-साथ यशोधरा तुम्हारी भी रक्षा करूँगा। वह जो तुम्हारे कोमल गर्भ में स्पन्दित हो रहा है, मेरी संतान, हमारे प्रेम का छुपा हुआ पुष्प, अगर उसे आशीर्वाद देने के लिए मैं रूक जाता हूँ तो मेरी मति मारी जायेगी और मैं उस मोहपाश में बँधकर गृह-त्याग नहीं कर पाऊँगा और फिर मानव-उद्धार का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाएगा। अतः यशोधरे ! मेरी पत्नी ! मेरी सखा ! पुत्र ! पिता और प्रजाजन ! तुम सबों को कुछ समय के लिए इस मानसिक वेदना की घड़ी को सहना होगा ताकि प्रकाश फूटे और सभी प्राणी उस नियम को सीखें जिससे जन-जन का कल्याण हो और तुम्हें भी संसार के भव-चक्र से मुक्त होने का मार्ग मिले। मैंने निर्णय ले लिया है और अब मैं प्रस्थान करूँगा एवं तब तक पुनः वापस नहीं आऊँगा जब तक मुझे वह, जिसकी मुझे तलाश है प्राप्त नहीं हो जाती- यदि मेरी तीक्ष्ण तलाश और संघर्ष जारी रहेंगे तो निश्चय ही वह चीज मुझे प्राप्त होगी। इस प्रकार सिद्धार्थ ने अपने भौं से यशोधरा के चरण-

स्पर्श किए और अपने प्रियतम और उसके नेत्रों से, वे नेत्र जो अभी भी आँसू से नम थे, बिना कोई शब्द व्यक्त किए बिदा लिया और फिर तीन बार उस शय्या की श्रद्धाभाव से परिक्रमा की मानो वह पूजा की वेदी हो। फिर दोनों हाथों को अपने धड़कते हृदय पर एक साथ रखते हुए उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा, "मैं अब कभी भी यहाँ नहीं लौटूँगा" और वे तीन बार महाभिनिष्क्रमण के लिए निकले पर पत्नी-पुत्र का इतना तीव्र आकर्षण था, उनका प्रेम इतना अगाढ़ था कि वे तीनों बार वापस आ गए। उसके बाद अंत में साहस जुटाकर अपनी चादर से अपने सिर को ढँकते हुए वे मुड़ गए और पर्दे के किनारे को हटा दिया। सामने विशाल कमरा था जिसमें उनकी सहचरियाँ गंगा, गोतमी एवं अन्य सो रही थीं। "आप सभी मुझे प्रिय हैं, मेरे मित्र !" उन्होंने कहा, "और आपको छोड़ना कष्टदायक है, फिर भी यदि मैं आपको नहीं छोड़ता हूँ, तो हम सभी को और क्या प्राप्त होगा सिवाय बुढ़ापे के जिससे कोई शांति न मिलेगी और फिर बुढ़ापे के बाद मृत्यु जिससे कोई लाभ न होगा वरन् हमारी हानि ही हानि होगी। देखो ! जैसे तुम गहरी नींद में सोए हुए हो उसी प्रकार तुम मृत्यु-पर्यन्त दीर्घ निद्रा में सोवोगे। जब गुलाब सूख जाता है तब उसकी सुरभि और शोभा कहाँ चली जाती है ? दीपक का तेल समाप्त हो जाता है तो उसकी लौ कहाँ चली जाती है? हे रात्रि देवी ! आप उनके झुके नेत्रों को और जोर से दबा दीजिए और उनके होंठों को बन्द कर दीजिए, ताकि कोई आँसू मुझे रोक न सके और न उनकी कोई भी आग्रह भरी प्रार्थना। आज उन सभी के लिए, जिन्होंने मेरे जीवन को अति सुंदर बना रखा था, मैं अपना जीवन समर्पित करता हूँ। आपसे बिछड़ना अति दुखदायी है पर दूसरी ओर यह और भी कष्टदायक है कि वे, मैं और हम सभी, इस प्रकार जियें जैसे वृक्ष जीते हैं- कुछ समय तक वसंत ऋतु, तत्पश्चात् कुछ समय तक वर्षा ऋतु, फिर पाला और जाड़ा और उसके बाद सूखी पत्तियाँ। संभव है एक बार पुनः वसंत आयेगा पर उसके बाद अंततः मृत्यु की जीवन पर वैसी ही मार पड़ेगी जैसी जड़ पर कुल्हाड़ी की मार। नहीं,

नहीं ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मेरे अन्दर अगर जरा भी शक्ति रही, जरा भी उर्जा बची रही तो इस जीवन में इस समस्या का निदान अवश्य ढूँढ निकालूँगा। मेरा जीवन देवताओं जैसा सुखमय था। मेरे दिन देवताओं जैसे बीते पर सारी प्रजा और मित्रगण अंधकार में विलाप करते रहे। ऐसा नहीं होगा कि मेरा यह महान त्याग और बलिदान व्यर्थ जायेगा। इसलिए मित्रों ! बन्धुओं ! अलविदा ! जीवन की सुन्दरता त्याग में है और मैं त्यागता हूँ - समस्त परिवार और संपूर्ण राज्य, उस मुक्ति मार्ग और अज्ञात प्रकाश की खोज में जिस पर मानव मात्र की आशा टिकी हुई है।"

इस प्रकार सोचते हुए और धीरे-धीरे चलते हुए, जहाँ सभी सोए थे उनके बगल से गुजरते हुए, सिद्धार्थ राजमहल के बाहर अंधेरे में प्रवेश कर गए। रात्रि की निश्चल आँखें, सजग तारे उनको प्रेमपूर्वक आशान्वित हो प्रसन्नचित्त देख रहे थे। धरती की श्वाँस, बहती हुई हवा ने उनके वस्त्र के फड़फड़ाते किनारे को चूमा, उद्यान की कलियों ने, जो सुबह खिलने के लिए सिकुड़ी हुई थीं, मध्य रात्रि में ही अपने मखमली हृदय को खोल दिया ताकि उनके गुलाबी और बैगनी सुगंधदायी फूलों की सुगन्ध चारों ओर फैल सके।

हिमालय से महासागर तक धरती काँप गई, मानो धरती की आत्मा एक अज्ञात आशा के साथ कंपायमान हो गई और पवित्र पुस्तकें, जिनमें बुद्ध की कथा लिखी है, वे भी कहती हैं कि हवा में एक अनोखा दिव्य संगीत फैल गया। एक से एक दिव्य मेजबान एकत्र हो गए। पूर्व और पश्चिम दिशा ने रात्रि को उज्जवल बना दिया और उत्तर और दक्षिण दिशा ने धरती को प्रसन्न कर दिया। धरती के चारों प्रतिशासक दो-दो करके दरवाजे के पास अपने चमकीले, अदृश्य सैन्यदल के साथ- नीलमणि, चाँदी, सोना और मोती रत्नों से सुसज्जित उतरे। सभी अपने हाथों को वंदना स्वरूप जोड़े हुए, उस राजकुमार को ध्यान से देखते रहे, जिनकी अश्रुपूर्ण आँखें तारों की ओर निहार रही थीं और होंठ अद्‌भुत,

विलक्षण प्रेम से पूर्णत: बंद थे। वे पूर्णत: गंभीर, शांत भाव से धीरे-धीरे साहसिक कदम रखते हुए घुड़साल के पास पहुँचे। घुड़साल के पास ही छंदक सोता था। छंदक के पास पहुँच धीमे से पुकारा- "छंदक ! उठो और कंटक को ले आओ !" "क्या कहा मेरे स्वामी ?" दरवाजे के बगल में अपने स्थान से धीरे-धीरे उठते हुए सारथी ने उत्तर दिया "रात्रि में सवारी करनी है जब सारे रास्तों में अँधेरा छाया है?" "धीरे बोलो," सिद्धार्थ ने कहा, "और मेरा घोड़ा लाओ क्योंकि अब समय आ गया है कि मैं यह सुनहरा कारागार सत्य की खोज के लिए त्याग दूँ जहाँ मेरा ह्रदय अब तक बंदी रहा है। मैं अब समस्त मानवजाति हेतु उस सत्य की खोज तब तक करूँगा जब तक उसकी प्राप्ति नहीं हो जाती है।" "अफसोस ! प्रिय राजकुमार," रथ सारथी ने उत्तर दिया, "क्या व्यर्थ ही महाज्ञानी भविष्यवक्ताओं ने हमें उस समय का इंतजार करने के लिए कहा था जब राजा शुद्धोदन के महान पुत्र संपूर्ण धरती पर शासन करेंगे और राजाओं के भी राजा होंगे? क्या आप अभी घुड़सवारी करेंगे और अपने हाथों से राज-पाट और यह संपूर्ण धन-धान्य से परिपूर्ण धरती निकल जाने देंगे और एक भिखारी का भिक्षापात्र थामेंगे ? क्या जिसके पास स्वर्ग का आनन्द उपलब्ध है, वह मित्रहीन संसार में जायेगा ?" राजकुमार ने उत्तर दिया, "मैं इस धरती पर सिंहासन पर बैठने के लिए नहीं आया हूँ। मैं जिस राज्य की कामना कर रहा हूँ, वह सभी राज्यों से अधिक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। सभी चीजें क्षणभंगुर हैं, समाप्त हो जाती हैं और अंततः हमें मृत्यु की ओर ही ले जाती हैं। कंटक को ले आओ !" "सर्वश्रेष्ठ श्रीमान्", सारथी ने पुन: दलील देते हुए कहा, "स्वामी ! अपने पिता के दु:ख की सोचें ! उनके कष्ट के विषय में सोचिए, जिनके आप ही परम आनन्द हैं- आप उनको समूल उजाड़कर उनकी मदद कैसे कर सकेंगे ?" सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "मित्र ! जो प्रेम स्वार्थमय फल के लिए किया जाता है वह प्रेम झूठा है। मैं आप सभी को अपने आप से भी अधिक प्यार करता हूँ और आप सभी को बचाने के लिए, सभी शरीरधारी की रक्षा करने हेतु आज

प्रयाण कर रहा हूँ ताकि प्रेम की पराकाष्ठा बनी रहे। जाओ, कंटक को ले आओ मेरे भाई और मित्र छन्दक !"

तब सारथी ने कहा, "स्वामी मैं आता हूँ" और दु:खी मन से वह घुड़साल में गया और ताख से चाँदी की लगाम, सोने की रस्सी और बाँधने की जंजीर लाया तथा चमड़े की पट्टी को डाल देने के बाद इन सभी को यथास्थान स्थापित कर दिया। फिर काँटे को फँसाया और कंटक को बाहर ले आया। खूँटे में पगहे को बाँधकर कंटक की कंघी की और उसे बर्फ समान सिल्क का श्वेत कोट पहनाया। घोड़े की पीठ पर जीन कसा और उसे ठीक किया। फिर आभूषित कमरबन्द को दृढ़ता से कसा और उस महान अश्व को राजमहल के दरवाजे तक लाया, जहाँ राजकुमार खड़े थे। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि जब उसने अपने स्वामी को देखा तो वह प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ा और अपने अंगूरी रंग के नाक को झाड़ते हुए खुशी से हिनहिनाया। शास्त्रों में आगे लिखा है, "निश्चय ही सभी ने कंटक का हिनहिनाना सुना था और धरती पर पैरों के पटकने की आवाज सुनी थी, पर देवताओं ने उन सभी के कानों के ऊपर अपने अदृश्य पंख लगा दिए थे और सोने वालों को बिल्कुल ही बहरा बना दिया था।" सिद्धार्थ ने प्रेमपूर्वक उस गर्वशाली अश्व के सिर को नीचे झुका दिया, चमचमाते हुए गर्दन को थपथपाया और कहा, "शान्त होवो, श्वेत कंटक! मेरे साथी ! शांत होवो और मुझे अब इस सृष्टि की सबसे लम्बी यात्रा पर ले चलो जिसे किसी घुड़सवार ने आज तक न की हो क्योंकि आज रात्रि मैं अपने प्रिय घोड़े को भी सत्य की खोज में ले जा रहा हूँ। मुझे अभी मालूम नहीं कि मेरी खोज का अंत कहाँ होगा और खोज भी पाऊँगा या नहीं पर इतना सुनिश्चित है कि जब तक मैं उस सत्य को खोज नहीं लूँगा, मेरी खोज का अंत नहीं होगा। इसलिए आज रात्रि, मेरे प्यारे घोड़े! आज तुम प्रचंड बहादुर बन जाओ ! कोई भी चीज तुम्हें रोक नहीं पाये, हजारों घास की झाड़ियाँ भी तुम्हारे मार्ग का अवरोधक न बन सकें ! न

तो कोई दीवाल और न कोई खाई हमारी यात्रा को रोक सके। देखो ! अगर मैं तुम्हारे शरीर के मांसल भाग को स्पर्श करूँ और कहूँ, "चलो कंटक !" तो फिर चक्रवात भी तुमसे पीछे छूट जायें। आज अग्नि और वायु दोनों बन जाओ मेरे मित्र ! आज अपने स्वामी को ऐसी ही सवारी कराओ और इस प्रकार तुम भी उनके साथ इस महान कर्म के फल को बाँटोगे जिससे संसार की मदद होगी। आज मैं सिर्फ मनुष्यों के लिए घुड़सवारी नहीं करूँगा, बल्कि उन सभी चीजों और प्राणियों के लिए करूँगा जो गूंगे हैं पर हमारे दु:ख में हमारे साथ हैं, जिनके पास आशा की कोई किरण नहीं है और न ही आशान्वित होने का कोई कारण है। अत: अब अपने स्वामी को बहादुरी के साथ ले चलो। अब हम और विलम्ब न करें।" उसके बाद घोड़े की काठी पर धीरे से चढ़ते हुए, वृत खंडी शिखा का स्पर्श किया और तब सिद्धार्थ को लेकर कंटक तेजी से अपने खुरों को पत्थर पर रखते हुए चल पड़ा परन्तु किसी ने उसके पदचापों की आवाज नहीं सुनी क्योंकि देवतागणों ने निकट ही खड़े होकर लाल मोहरा के फूलों को तोड़ उन्हें उसके पगों के नीचे घना फैला दिया था। देवताओं के उन अदृश्य हाथों ने आवाज की तीव्रता कम करने के लिए बजते हुए लगाम और लगाम-चेन को ढँक दिया था। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में यह भी लिखा हुआ है कि जब वे अंदर के द्वार के निकट पत्थर के फर्श तक आए तब वायु के यक्ष ने घोड़े के पैरों में जादुई कपड़े बाँध दिए थे ताकि वह कोमल और शांत चापों से चल सके। लेकिन जब वे गेट पर पहुँचे जो तीन गुना पीतल का बना था और जिसके दरवाजे मुश्किल से सौ लोग हटा और खोल सकते थे- दरवाजा पूरी शांति से अपने आप पीछे की ओर हट गया यद्यपि दिन में उसके खोले जाने पर आदमी दो कोस तक उसके विकट कब्जे और विशाल प्लेट की गरजने की आवाज सुन सकते थे। फिर भी उस दिन किसी ने कोई आवाज नहीं सुनी। इसी प्रकार जब सिद्धार्थ और उनका घोड़ा दरवाजे के निकट आए तो मध्य और बाहरी

दरवाजों ने अपने आपको शांतिपूर्वक खोल दिया। उन दरवाजों की रक्षा के लिए तैनात सभी रक्षक भाले और तलवार लिए शिथिल पड़े हुए थे, ढाल ढीले होकर पड़े हुए थे। नायक और सिपाही सभी मृतकों समान सोये हुए थे। उस समय एक अजीब सी हवा बही थी जो खेतों के ऊपर से बहने वाली मालवा की सुलाने वाली हवाओं से भी अधिक निद्रालु थी। उसे सूँघकर सभी सो गए थे और इस प्रकार राजकुमार सिद्धार्थ अपने घोड़े पर सवार छंदक के साथ बिना किसी अवरोध के राजमहल से बाहर निकल गए। राजकुमार सिद्धार्थ कंटक पर सवार लगातार पूरी रात चलते गये, चलते गये। जब सुबह का तारा आधे बरछी की लंबाई के बराबर पूरब की दिशा से ऊपर था और धरती के ऊपर सुबह की साँसें महसूस होने लगीं तब अनामा नदी की लहरों को पार करने के बाद राज्य की सीमा समाप्ति पर उन्होंने लगाम खींच ली और घोड़े पर से धरती पर कूद गए। श्वेत कंटक को प्यार से चूम लिया जो कान हिला कर अपना प्रेम प्रकट कर रहा था जैसे जानवर अपने स्वामी के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया करते हैं। उसके बाद राजकुमार ने अपनी तलवार से अपने लंबे केश काट डाले और प्रेम पूर्वक छन्दक से कहा, "तुमने मुझ पर जो उपकार किया है वह तुम्हारे और सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी होगा। सुनिश्चित हो जाओ कि मैं सदा तुम सभी को अत्यधिक प्यार करता था और करता रहूँगा।" मेरे घोड़े को वापस ले जाना और मेरे आभूषण, मेरे राजसी वस्त्र, जिन्हें आज के बाद मुझे धारण नहीं करना है, मेरी रत्न जड़ित तलवार, मेरे लंबे चमकते केश ये सभी राजा को दे देना और कहना, "सिद्धार्थ ने क्षमा-प्रार्थना की है कि उसे तब तक के लिए भूल जाएँ जब तक वह दस गुने राजकुमार के रूप में अति महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वापस नहीं आ जाता है। मैं खोज के लिए अकेला निकला हूँ और उस प्रकाश के लिए संघर्ष करूँगा और यदि मैं जीत जाता हूँ तो देखो ! सेवा और ज्ञान के द्वारा सारा संसार मेरा हो जाएगा, मेरा हो जाएगा ! प्रेम के माध्यम द्वारा ! क्योंकि मनुष्य की आशा सिर्फ मनुष्य पर

ही है। समस्त मानव जाति की आशा मानव पर ही टिकी है क्योंकि मानव का उद्धार सिर्फ मानव के हाथों ही हो पायेगा। किसी ने आज तक उस प्रकाश को खोज नहीं निकाला है, जिसकी मैं खोज करूँगा। मैं अपना संसार (निजी) छोड़ रहा हूँ ताकि अपने संसार (संपूर्ण चराचर प्राणि) को बचा सकूँ।"

पंचम सर्ग
प्रव्रज्या

राजधानी राजगृह को प्रकृति का वरदान प्राप्त है। उसकी मनोरम शोभा देखते ही बनती है। यह पाँच पावन पर्वतों एवं पवित्र वनों से घिरी हुई शोभित है। पहला पर्वत 'वैभार' सघन ताल और तमाल के वृक्षों से मंडित है। दूसरे पर्वत 'विपुलगिरि' के तले सरिता की पतली धार बहती है। तीसरे पर्वत 'तपोवन' की छाँव में जल से भरे सरोवर विद्यमान हैं। इनमें श्याम शिलाओं का प्रतिबिंब बहुत ही मनमोहक लगता है। यहाँ चट्टानों से शिलाजीत पिघल कर नीचे की ओर धीरे-धीरे टपक रहा है और वृक्षों की शाखाएं सरोवर के पानी में भींगती हुई झूम रही हैं। आग्नेय कोण में सुन्दर 'शैलगिरि' पर्वत स्थित है जो मन को मोह लेता है, जबकि 'गृध्रकूट' पर्वत का शिखर दूर से ही नजर आता है। पूर्व और पश्चिम दिशा में 'रत्नगिरि' पर्वत शोभायमान है जो रत्नों की खान तथा हरे-भरे वृक्षों के समूह से आवृत है। आपको आम, जामुन तथा फूल वाले बागीचे से होकर आना होगा। बेर और बाँस की कँटीली झाड़ियों से बचकर टीलों पर चढ़ना होगा। तब फिर आप सामने पास में समतल भूमि देख सकेंगे। इस खूबसूरत जंगल में पहाड़ की ढाल पर एक से एक सुन्दर फूल खिले दिखेंगे और भीतर चलने पर गुफा के द्वार के सामने बरगदों का झुंड मिलेगा। ऐसा पवित्र स्थान आपको संसार में और कहीं नहीं मिलेगा। यदि आप यहाँ नहीं आये तो जीवन भर पछतायेंगे। भक्ति, श्रद्धा एवं आस्था से सराबोर होकर आप अंदर प्रवेश कीजिए एवं पवित्र, निर्मल हृदय से सादरपूर्वक अपना मस्तक झुकाइये। यह वही स्थान है जहाँ बुद्ध ने भीषण ग्रीष्म, पौष और माघ की ठंड एवं घनघोर वर्षा ऋतु की भयंकरता को सहते हुए घोर तपस्या की थी। यहीं समाधि में बैठकर चिंतन-मनन किया था तथा जन कल्याण के लिए अहर्निश आत्म-मंथन किया था। लोक कल्याण के लिए ही उन्होंने अपने कोमल शरीर पर गेरुआ वस्त्र धारण

किया था और भिक्षा में जो भी शाक-पात मिलता उसे खाकर पेट भर लेते थे। अपने घर-द्वार तथा स्वजन-परिवार को त्यागकर वे घास-फूस पर सोकर रात्रि बिताते थे। कभी सियार बोलते थे तो कभी बाघ की दहाड़ से सारा जंगल काँप उठता था। भिक्षु सिद्धार्थ इस भाँति वहीं दिन-रात तपस्या में लीन रहते थे। जिसका सुकुमार तन सुख भोगने के लिए बना था वह अपने शरीर को तपस्या में तपा रहा था। वे व्रत नियमों का पालन करते, नाना प्रकार का उपवास रखते तथा ध्यान लगाते। आसन मार अखंड समाधि में लीन हो मूर्तिवत हो जाया करते थे। कभी उनके जांघ पर गिलहरी चढ़, कूद जाती तो कभी शरीर पर खेलती तथा दौड़ जाती। कभी कबूतरी उनके हाथ के पास दाना चुग जाती, कभी गुटरगूँ करती तो कभी कंठ हिलाती। पर इन सब का उन्हें भान तक नहीं होता। जब भरी दुपहरी में धरती पर लू चल रही होती, सूरज धधकती हुई आग उगलता तो तपती हुई धरती ऐसी लगती मानो सारा वन तपिश में नाच रहा हो। तब भी इस सब के बीच सिद्धार्थ ध्यान मग्न बैठे रहते। उन्हें यह ज्ञात तक नहीं होता कि दिन समाप्त हो गया। जब सूरज ढलता तो पर्वत के किनारे जले हुए आग के गोले के रूप में दीखता। जब सूर्य की आभा खेत-खलिहानों पर बिखर जाती तो वह दीप का बिंब सा प्रतीत होता। पुनः संध्या बेला की समाप्ति पर जब गगन मंडल में टिम-टिम करते तारे अपनी रोशनी बिखेरते तथा सारे नगर में मंगल ध्वनि बज उठती, उस समय भी राजकुमार ध्यानमग्न होते। रात होने पर जब पूरा संसार सो जाता और केवल उल्लू की बोली और सियार का रोना ही कभी-कभी सुनायी देता तब भी सिद्धार्थ आसन पर विराजमान रहते और उनके मन में केवल यही विचार रहता कि आखिर जीवन का सत्य है क्या ? मध्य रात्रि में जब सारा संसार शांत और स्थिर हो जाता तब हिंसक और जंगली जानवर अपने शिकार के लिए निकलते और ठीक उसी प्रकार गर्जन करते जैसे मन के अज्ञान रूपी जंगल में मनुष्य के सारे दोष जैसे ईर्ष्या-द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार तथा लोभ अजेय विचरण करते हैं, कभी

नहीं हारते। चंद्रमा अपने पथ पर जितना चलता उसके आठवें अंश के बराबर ही गौतम रात्रि के अंतिम प्रहर में विश्राम करते और पुनः सूर्योदय के पूर्व ही उठकर प्रतिदिन चमचमाती शिलाखंड पर घंटों ध्यानमग्न खड़े रहते। वे सोई हुई धरती और धरतीवासियों को नम आँखों से देखते तथा जीवों की दशा और दुर्दशा देख ह्रदय से रो पड़ते। फिर सुनहली प्रभात की किरणों के स्पर्श से रोमांचित मनोहर सुंदर खेत लहलहाते नजर आते। शुरू में कुछ स्पष्ट नजर नहीं आता, बल्कि एक हल्की धुंध सी दिखती परंतु पूर्व दिशा से निकलने वाली किरण यह संकेत देती कि सुबह होने ही वाली है। जब नगर के अन्दर मुर्गा बांग देना शुरू कर देता तब पर्वत की चोटी पर प्रकाश की सफेद लकीर सी दिखती। लगता था यह धीरे-धीरे शुभ्रतर, उज्जवल हो जाएगी तथा पुनः सोने की पीली आभा में परिणत हो जाएगी। बादलों के टुकड़े रक्ताभ, नीले और पीले रंग में ऐसे चमचमाते मानो आकाश में किसी ने चमचम की सुनहरी गोट चढ़ा दी हो। तब सारे संसार के जीवन के आधार, परम प्रतापी सूर्य का प्रकाश रूपी मनोहर परिधान के साथ पदार्पण होता। राजकुमार ऋषि समान नित्य क्रिया के पश्चात् भगवान भास्कर को शीश नवाकर प्रणाम करते। उसके बाद अपना भिक्षापात्र लेकर भिक्षा हेतु नगर की ओर निकल जाते। योगी रूप में वे गली-गली घूमते तथा जो कोई कुछ दे देता उसे हाथ पसारकर ले लेते। जब भिक्षा से उनका पात्र भर जाता तब अनेक 'यह लें महाराज' कहते रह जाते। उनके दिव्य रूप, सुखदायी नेत्रों एवं सौम्यता को देखकर नगर के सारे नर-नारी ठगे से रह जाते। माताएँ अपने पुत्रों को लेकर दौड़ी-दौड़ी आतीं और बुद्ध के चरणों में रखकर उनसे आशीर्वाद की याचना करतीं। कोई उनके चरणों की धूल माथे लगाती तो कोई अपने माथे को उनके चरणों पर झुकाती। कोई मीठे पकवान तो कोई पानी लाती। दिव्य दयावान भिक्षु ध्यान में लीन हो धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक चलते जाते। प्रेम और भक्ति भाव से पूर्ण नर-नारियों की आँखें उन पर क्या पड़तीं ? उनका अनूप रूप उन्हें लुभाता और आँखें उन पर जा गड़तीं,

वे टकटकी लगाए देखती ही रह जातीं। आँखें हटने का नाम ही नहीं लेतीं, आँखों के रास्ते उनके हृदय में प्रेम प्रवेश कर जाता। किन्तु सिद्धार्थ भिक्षा के लिए अपने हाथ में पात्र लिए और शीश झुकाए अपना रास्ता पकड़े चलते जाते। उनके मीठे वचनों को सुन सभी लोग शांत एवं संतुष्ट हो जाते और फिर तथागत 'गिरिव्रज' की ओर वापस लौट आते तथा फिर से ध्यान में लग जाते। जितने योगी, पंडित और ज्ञानी उनके आस-पास बैठे रहते वे उनसे ज्ञान की बातें सुनते और पूछते कि सही मार्ग क्या है?

हठयोगियों से संवाद

रत्नगिरि की ओर जो शांत कुंज है वहाँ पर कुछ मुनि रहा करते थे जो सदैव इस शरीर को नश्वर और इसे चैतन्यता का शाश्वत शत्रु मानते थे। "शरीर की इंद्रियाँ विकराल पशु के समान हैं। इसलिए अपने वश में कर उन्हें मार डालिये। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट पहुँचा उनका दमन कर डालिए। ऐसा करने से क्लेश की सब वेदना अपने आप ही मर जायेगी। शरीर न तो गर्मी की तपिश से तप्त होगा और न ही जाड़े की शीत से काँपेगा।" नाना ऋषि-मुनि अपने घर का त्याग कर निर्जन और सुनसान वन में अपनी तपस्थली बना मन लगाकर योग-साधना करते थे। कहीं कोई दोनों बाहों को उठाकर पूरे दिन खड़ा रहता, उसे अपनी दोनों बाँहों को मोड़ने तक का भी समय नहीं मिलता था। कई उखड़े और कटे हुए लकड़ी के ऊपर चढ़े हुए थे। कई शरीर को सुखाकर क्षीण और गतिहीन होकर तन से सूखे काठ के समान लगते थे। कोई कठोर हो अपने कान में कील ठोकता तो किसी के नाखून भालुओं के नाखून से भी अधिक बढ़े हुए थे। कोई लोहे की कील को बिछाकर उस पर आसन मार बैठे रहता तो कोई अपने शरीर के प्रत्येक अंग को मरोड़ता और ऐंठता। कोई आग जलाकर पंचाग्नि में अपने आप को तपा देता था तो कोई जलते हुए पत्थर से मार-मार कर शरीर को जर्जर बना लेता। कोई शरीर पर राख और मिट्टी पोतकर चीथड़े वस्त्र धारण किए रहता।

कोई श्मसान में बैठकर दिन-रात शिव नाम की माला जपता जहाँ सियार शव को नोच भागते तथा गिद्ध मँडराते रहते। कोई पूर्व दिशा में मुख करके एक पाँव पर खड़ा रहता और जब तक सूर्य अस्त नहीं हो जाता वह कुछ खाता-पीता नहीं था। लगातार दु:ख सहता हुआ देह के मांस को गला देता था। चमड़ी हड्डियों से सट चुकी थी और नसें सूखकर रस्सी की तरह दिखती थीं। कोई कमजोर होने के बावजूद चाँद्रायण व्रत करता तो कोई अनशन रखता। कोई धूल में लोट जाता तो कोई मुँह में राख भर लेता। कोई रसना को सुन्न कर जड़ी-बूटी चबाता और इस प्रकार अपनी स्वाद की हर वासना को दबा देता था। किसी ने अपने पैर काट लिए तो किसी ने अपनी जीभ काट डाली। किसी ने आँखें निकाल, कान नोच अपने शरीर की आभा छीन डाली। अंगहीन, गतिहीन, गूंगा, बहरा और अंधा विकल होकर गिर पड़ा। जीवित होने के बावजूद मृतक के समान काठ की तरह जमीन पर पड़ा हुआ था। उनकी धारणा थी कि जो इस धरती पर ही देह-दंड की सारी कठोर यातना सह लेते हैं, उन्हें फिर यमराज की प्रताड़ना का भय नहीं रहता। सारे वेद, शास्त्र, पुराण और आगम यही कहते हैं कि सारे क्लेशों को जीतकर मनुष्य सुंदर देवगति प्राप्त करता है। इन सभी दृश्यों को देखकर भिक्खु सिद्धार्थ ने उन योगियों में से एक के पास जाकर इस प्रकार कहा, "ओह ! आप तो यह घोर क्लेश सह रहे हैं। मैं पिछले एक महीने से यह सब देख रहा हूँ। यहाँ और भी बहुत सारे आपके समान तपते हुए दिख रहे हैं। इस जीवन में पहले से ही दु:ख कहाँ कम है जो आप यहाँ और अधिक क्लेश बढ़ा रहे हैं ?" तपस्वी ने कहा, "हम कुछ और नहीं जानते, हम तो वही कर रहे हैं जो ग्रंथों में लिखा गया है। जो कोई अपने शरीर को तपाकर पीड़ा सहेगा वह मृत्यु को विश्राम स्वरूप मानेगा क्योंकि पीड़ा सहने से पाप नष्ट हो जाते हैं जिससे जीव शुद्ध हो निखर जाता है और उसे लोक में शुभ प्राप्त होता है। इस संसार के कष्टमय एवं तापपूर्ण कुएं से निकल कर दिव्य स्वरूप ले लोकों में विचरण करता है। उन दिव्य लोकों में वह नाना

प्रकार की सुख-सुविधाओं का भोग करेगा जिसकी कोई यहाँ क्या कल्पना कर सकेगा ?" सिद्धार्थ ने कहा, "जो शुभ मेघ आकाश में दिख रहा है उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो इन्द्रासन में सोने का पर्दा लगा हो। वह हवा से कँपकँपाता हुआ समुद्र से उठकर आसमान में चला जाता है और फिर अश्रु की बूँद की तरह अवश्य ही नीचे गिर जाता है। कीचड़ में सनकर वह सिर धुनता है और नदी-नालों से बहता हुआ, नि:संशय ही पुन: सागर में जा गिरता है। क्या उसके इसी रूप को स्वर्ग का सुख भोग नहीं कहा गया है जिसे मुनिजन साधना तथा तप-योग करके अर्जित करते हैं ? जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे जा गिरता है, जो चीज खरीदी जाती है वह धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है, जगत का यही अटल नियम है। यह किसको नहीं दिखता ? अपने शरीर से रक्त निचोड़कर इस प्रकार सुख धाम खरीदते हैं पर जब वह भोग पूरा हो जाता है तो फिर वही भवचक्र, फिर अविराम कष्ट प्रारम्भ हो जाता है। न जाने किसकी क्या गति होगी, भविष्य किस-किस भाँति रहेगा क्योंकि निशा के बाद दिवस आता है और श्रम के बाद अनंतर शांति।" ऋषि ने कहा, "रक्त मांस से बने शरीर से हमारा कोई मोह नहीं है जो जीवन को विषय-वस्तुओं में बाँधे रहती है। हम जीव की भलाई के लिए ही देवताओं को तुष्ट करते हैं क्योंकि यह पीड़ा तो क्षणिक है, वस्तुत: हमें निरन्तर सुख की आशा लगी हुई है।" इस पर कुँवर ने कहा, "भाई मेरे ! उस सुख की अवधि भी सीमित है। करोड़ों वर्ष रहने पर भी अंत में उसकी समाप्ति तय है। इन सारे देवताओं के अपने नित्य धाम कहाँ हैं ?" तब योगियों ने कहा, "इस संसार में कुछ भी नित्य नहीं है, देवतागण भी नित्य नहीं हैं। यदि कोई नित्य है तो वह केवल ब्रह्म है। हम और कुछ नहीं जानते।" यह सुनकर भिक्षु सिद्धार्थ ने कहा, "सुनो हे मेरे भाई ! तुम तो मुझे ज्ञानवान और दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई पड़ते हो, फिर अपने शरीर को दाँव पर क्यों लगा रहे हो ? ऐसे सुख पर दाँव क्यों लगा रहे हो जो स्वप्न समान नष्ट हो जाता है। तुमने आत्मा को प्रिय और शरीर को अप्रिय माना, जिसे

प्रताड़ित किया और इस दुर्गति को प्राप्त किया। जो जीवन का सम्मान करने में समर्थ नहीं है वह अपना मार्ग कैसे ढूँढ़ पायेगा ? तुम बीच में ही अकड़कर अपना पंथ खोज रहे हो। जो घोड़ा अपने मन से ही रास्ते पर स्वयं बढ़ता चला जा रहा है उसे चाबुक की मार से मार-मार कर जर्जर कर दे रहे हो। पूर्व कर्मानुसार जिस शरीर में आत्मा का निवास रहता है, जीव के उस भवन, उस जीवधारी शरीर को जबरदस्ती ढाहने पर क्यों तुले हो ? इनके द्वारों से हम कम से कम कुछ प्रकाश तो पाते हैं। जब दृष्टि उठाते हैं तब कुछ धुँधला तो दिखता है कि कब प्रभात होगा, कब घोर तम-पुंज का नाश होगा और सुन्दर, सीधा तथा सुगम मार्ग भी दीखेगा।" योगियों ने हारकर कहा "हमारा पंथ यही है, हम इसी पर अंत तक चलते रहेंगे, सारे दुःख भी सहेंगे। यदि तुम कोई इससे अधिक सुगम मार्ग जानते हो तो कृपया हमें बताओ वरना बस आनन्द करो, इधर ध्यान देने की जरूरत नहीं है।" यह जवाब सुनकर बुद्ध का मन खिन्न हो गया और वे आगे बढ़ गए तथा सोचने लगे कि कैसे मृत्यु से भयभीत नर भय को भी मात दे रहा है। जीवन से जितनी प्रीति कर सकता उतनी भी नहीं करता। प्रेम करने की बजाए वह जीवन को ही मुश्किल में डाल अपनी व्याकुलता बढ़ा लेता है। देवों को रिझाकर प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न करता है जो मनुष्यों के सुख को देख सुखी नहीं होते। वह जीवन को नरक बना नरक की भयंकरता को कम करने का प्रयास करता है और तप के पागलपन से मुक्ति का उपाय खोजता है। तब सिद्धार्थ अचानक खिले हुए फूलों को देखकर बोल पड़े, "अहा ! कितने सुन्दर मनोहर फूल हैं जो उदित सूर्य के प्रकाश में अपने कोमल मुखों को खोल लेते हैं। प्रकाश पा ये हर्षित होते हैं और इनमें श्वांस-सौरभ का संचार होता है। ये फूल सफेद, सुनहरे और लालिमा युक्त वस्त्रों समान सजे धजे हैं। तुममें से किसी ने भी जीवित अपने जीवन को मिट्टी में नहीं मिला दिया और न हठ के कारण अपने सुन्दर रूप को बिगाड़ लिया। वाह ! कितना सुन्दर दृश्य है ! ताड़ का विशाल वृक्ष आकाश की ओर अपना मस्तक

उठाकर पवन को पीकर अघा रहा है और आसमान को छूना चाहता है। मेघ अपने शीतल जल को नीले गगन में फैला रहा है तथा मलयगिरि पवन में सुन्दर गंध व्याप्त है। हे प्रिय वृक्ष ! तुम्हारा रहस्य क्या है कि तुम अंकुर से लेकर फल होने तक दूसरों को खुशी देते हो और संतुष्ट रहते हो ? तुम्हारे पत्ते पंखे की तरह मरमर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। हँसते-हँसते जगत में स्वयं को समृद्ध करते हैं। वृक्षों की डालों पर विचरने वाले हे पक्षीगण ! तोता, मयूर, कबूतर, कोयल आदि ! तुम न तो कभी जीवन का तिरस्कार करते हो और न ही अधिक सुखों के लिए अपने तन-मन को पीड़ा देकर मर जाते हो। परन्तु जीवों में श्रेष्ठ मनुष्य तुम्हें मार डालता है और मंद बुद्धि से रक्तपात कर ज्ञानी कहलाता है। अधिकतर मनुष्य इसी विचार के वशीभूत होकर स्वयं को पीड़ा देने में स्पर्धा करते रहते हैं, आत्म-क्लेश देने में ही ये माहिर तथा चतुर हैं।"

यह कहकर बुद्ध चट्टानों के रास्ते कुछ आगे बढ़े ही थे कि खुरों के आघात से उड़ती धूल और भेड़-बकरियों का एक बड़ा झुंड सामने आता दिखा जो रुक-रुक कर दूब पर अपना मुँह चला देता था। जहाँ कहीं पानी या लटकते गूलर के डाल देखते वहीं दो-चार अपने रास्ते को छोड़ उधर ही लपक जाते। गड़रिया उन्हें बहकता देख अपने डंडे से हाँककर उन्हें पुनः रास्ते पर लाता। उसी समय भिक्षु सिद्धार्थ ने दो बच्चों के साथ एक भेड़ आती देखी। भेड़ के दोनों छोटे मेमने लहूलुहान थे, उन नन्हें पावों से रक्त बह रहा था। वे काफी थके हुए थे एवं उनकी माँ प्रेम से उन्हें चींची करती और साथ चलने के लिए उकसा रही थी। जब बच्चे रुक जाते और आगे नहीं बढ़ पाते तो वह अधीर, व्याकुल हो रुक जाती क्योंकि बच्चों की पीड़ा उसे आगे बढ़ने से रोक देती थी। लँगड़ाते बच्चों को देख सिद्धार्थ ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और कंधे पर लादकर अपने हाथों से सहलाया और कहा, "हे ऊनदायिनी माता भेड़ ! तुम मत घबराओ ! मैं इन्हें वहीं पहुँचा देता हूँ जहाँ तुम्हें जाना है। मेरा मानना है कि एक कराहते

पशु की पीड़ा को हरना अनेक योग तथा तप-साधना से अधिक पवित्र कार्य है।" फिर सिद्धार्थ ने आगे बढ़कर चरवाहों से पूछा, "हे भाई ! इतनी धूप में तुम लोग इस झुंड को कहाँ लिए जा रहे हो ? सामान्यत: संध्या बेला में ही भेड़ों को उनके चारागाह में वापस लाया जाता है।" सभी ने उत्तर दिया, "हमें राजाज्ञा मिली है कि बलि देने के लिए आज एक सौ भेड़ चुन-चुनकर लाओ। मान्यवर महाराजाधिराज आज रात्रि में देवपूजन करेंगे। इसलिए राजमहल में अनेक प्रकार के उत्सव मनाये जा रहे हैं।" सिद्धार्थ ने धैर्यपूर्वक कहा, "मैं भी चलता हूँ" और उनके साथ धूप में उन बच्चों को गोद में उठाए राजमहल की ओर चल दिए। उनके धूमिल भाल पर पसीने की बूँदें चमक रही हैं और पीछे-पीछे भेड़ में-में करते चले जा रहे हैं।

किसा गोतमी

सभी चलते-चलते एक नदी के किनारे जा पहुँचे जहाँ उन्हें एक सुंदर, अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली नवयुवती मिली। वह बुद्ध को करबद्ध प्रणाम कर कहने लगी, "गुरूवर ! मैं आपको जानती हूँ। आप वही करुणानिधान हैं जिन्होंने कल मेरी कुटिया में आकर मुझे धीरज बँधाया था जहाँ मैं अपने शिशु के साथ अकेले रहा करती थी। वह बच्चा एक दिन फूलों के बागीचे में घूम रहा था जब उससे अकेले में एक साँप लिपट गया। वह बच्चा उसके साथ किलकारी मारकर खेलने लगा और साँप ने फुँफकार मारते हुए उसे डँस लिया। हाय ! इससे उसका पूरा शरीर तत्काल गतिहीन और नीला पड़ गया। वह हिलना-डोलना भूल गया और माँ का दूध पीना भी। किसी ने बताया कि इसके शरीर में विष फैल गया है और 'इसे कोई भी नहीं बचा सकता।' किन्तु मैं अपने प्राणधन को कैसे खो सकती थी? इसलिए झाड़-फूँक आदि सब कराई और देवताओं की मनौती करके भी थक गई। मैंने हर प्रयास किया कि मेरा बच्चा एक बार फिर अपनी आँखें

खोल मुझे देखे और मेरी ओर निहार कर प्रसन्न मन से मुझे 'मैया' कह कर पुकारे। मैं यह नहीं जानती थी कि सर्प दंश मृत्युकारी होता है और न ही मेरा पुत्र किसी को अप्रिय था। फिर भला साँप को इससे क्या दुश्मनी थी कि उसने इस अबोध एवं अनजान को खेल-खेल में डँस कर उसके प्राण हर लिए ? तब किसी ने मुझे बताया 'तुम पर्वत के पास जाओ। वहाँ एक सिद्ध महात्मा रहते हैं, शायद वे तुम्हारे बच्चे का कुछ कल्याण कर सकें।' मैं यह सुनकर आपके पास दौड़ती, काँपती, बिलखती हुई आई। आपके दिव्य रूप को देख, पुलकित हो, अश्रुपूर्ण नेत्रों से मैंने बिलखते हुए शिशु के मुँह से कपड़ा हटाकर शिशु को आप के चरणों पर डाल दिया और करबद्ध विनती की, 'दयामय ! अब आप ही कुछ उपचार करें !' आपने मुझ पर दया दिखाई और मुझे टाला नहीं। सजल नेत्रों से शिशु को छूकर कहा, 'मैं जितना उपचार जानता हूँ, उतना अवश्य बताऊँगा ताकि शिशु और तुम्हारा दोनों का उपचार हो सके, जो तुम ला पाओगी वही मैं तुमको बताता हूँ। कहते हैं कि रोगी को उस दवा का प्रबंध करना पड़ता है जिसका वैद्य सुझाव देता है।' ठीक उसी प्रकार आपने मुझे भी आदेश दिया कि तुम किसी घर से सरसों के कुछ दानें माँग कर लाओ, पर ध्यान रहे कि तुम्हें सरसों उसी घर से लानी है जिस घर में अभी तक माता-पिता, भाई-बहन, बालक-बालिका, नर-नारी या किसी भी व्यक्ति की मृत्यु नहीं हुई हो। यदि ऐसी सरसों तुम ला सकोगी तो तुम्हारा लाल फिर से जी उठेगा। आपने उस समय यही बात कही थी !"

सिद्धार्थ मुस्कराते हुए बोले, "हाँ, किसा गोतमी ! मैंने तुमको यही बात कही थी, यह मुझे अच्छी तरह याद है। क्या तुम्हें ऐसी सरसों मिली ?"

गोतमी करूणामय के सम्मुख शीश झुका, विलखती, व्याकुल होकर बोली, "मृत शिशु को लेकर मैं धैर्यपूर्वक घर-घर सरसों माँगती रही। लोग मुझ पर दया कर सरसों देते भी थे। जिससे भी सरसों माँगा उसने ही बुलाकर सरसों दे दी क्योंकि आदिकाल से ही दीनों पर दया करने की रीति चली आ रही है। परन्तु जब मैं पूछती कि क्या तुम्हारे घर कोई माता-

पिता, पति, पुत्र, बंधु, बहन या देवर मृत्यु को प्राप्त हुआ है तो लोग आश्चर्यचकित हो यही कहते, 'क्या कहा बहन ? तुम अज्ञानी जान पड़ती हो। न जाने कितने मरे हैं, इस घर में जीवित प्राणी तो थोड़े ही हैं।' मैं उन्हें सरसों लौटा कर फिर दूसरे घर जाती और सरसों माँगती लेकिन सभी लोग उदास होकर यही कहते, 'कोई न कोई मरा है।' सभी ने अति उदास होकर यही कहा 'सरसों तो है पर मेरा भाई मर गया है। सरसों है, पर बहन ! मेरा पति मुझे छोड़ गया है। सरसों तो है पर उसे बोने वाला नहीं रहा। काटने के पहले ही, हाल ही में स्वर्ग सिधार गया।' फिर मैंने उस शिशु को नदी किनारे नरकट की झाड़ी में डाल दिया जो अब न तो बोलता है और न हँसता है और अब आपके पास विनती करने आई हूँ, यह जानने आई हूँ कि मुझे वह सरसों कहाँ मिलेगी ?" तब करुणा से पूर्ण द्रवित, अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त, भारी हृदय से शाक्य-मुनि ने कहा, "जो चीज नहीं मिल सकती उसको खोजकर तुम हार गई हो, पर इसी क्रम में तुमने उस कटु सत्य, उस महान औषधि की खोज कर ली है कि मनुष्य का शरीर नश्वर है, वह स्थायी नहीं है। मैंने कल ही देख लिया था कि तुम्हारा पुत्र महानींद में सो रहा था, उसकी मृत्यु हो चुकी है। वही तुम आज देख रही हो और यही दुःख का कारण है। दूसरों का दुःख देखकर स्वयं अपना दुःख कम हो जाता है। बहुतों में बँट कर वह हल्का हो जाता है। मेरे अपने हृदय का संपूर्ण रक्त दे देने से यदि तुम्हारे आँसू रुक जायें तो मैं अपने को बहुत आभारी समझूँ क्योंकि मृत्यु अटल है। इसका मर्म कोई भी नर-नारी नहीं जानता जो प्रेम-माधुर्य के बीच विष घोल देती है और मनुष्यों को बटोर कर बलि के लिए ले जाती है। जैसे प्रकृति के सौन्दर्य के मध्य, फूलों से लहलहाती वाटिका के बीच मूक पशुओं को हाँक कर ढो ले जाते हैं, उसी तरह ही हम सभी मृत्यु रूपी बलि की ओर खिंचे जा रहे हैं। मेरी भगिनी ! मैं उसी रहस्य की तलाश कर रहा हूँ। इसलिए अब तुम देर मत करो। अपने शिशु का अंतिम क्रिया-कर्म कर डालो।"

यज्ञ-बलि-दर्शन

बुद्ध अपनी गोद में पशु को उठाए पशु समूह के साथ नगर में प्रवेश करते हैं जहाँ सूर्य की सुनहली किरणें सोन नदी के जल पर पड़ रही हैं। नदी का संपूर्ण जल सुनहला बनकर चमक रहा है। अब नगर की गलियों में लंबी परछाईं समाप्त होने वाली है। वहीं नगर के द्वार पर प्रतिहारी दण्ड लेकर खड़े हैं। वे सभी बुद्ध को पशुओं को साथ लाते देख मौन रहकर उनके लिए आदरपूर्वक रास्ता दे रहे हैं। बाजार में बैठे लोग, जो जहाँ हैं, वे अपना सब काम-काज छोड़ उन्हें देखने लगे हैं। ग्राहक और बनिया अपना झगड़ा रोक उनका सुंदर रूप निहार रहे हैं। लुहार का हथौड़ा उठा का उठा ही रह गया, वह मार नहीं पाया। जुलाहे बुनना तजकर ताक रहे हैं और लेखकों की लेखनी हाथ में ही रह गई। सराफ सुध भूल गए, चकरा गए कि अब पैसों के ढेर को कौन गिने ? अन्न की राशि पर भी किसी की दृष्टि नहीं रही और साँड़ सुख से खाने लगे, मटकी से दूध की धार बह चली, ग्वाले सिद्धार्थ को ठगे से देखते रह गए। नगर की अनेक नारियाँ मिलकर आपस में पूछतीं, "बलि के हेतु ये कौन पशु लिए जा रहे हैं ? इतनी पवित्रता, शांति, कोमल ललाट, मन को हरने वाली सुन्दरता एवं कोमलता धारण किए हैं। हे सखी ! बताओ तो इनकी जाति क्या है और इन्होंने कहाँ से इतने सुन्दर, लजीले नेत्र प्राप्त किये हैं ? कामदेव की भाँति समग्र मादक लगते हैं जैसे सुन्दर इन्द्रधनुष गतिमान हो।" किसी ने कहा, "यह वही सिद्ध पुरुष हैं जो गिरि के पार योगियों के संग रहते हैं।" उधर अपना पंथ पकड़ सिद्धार्थ मन ही मन यही विचार करते हुए चले जा रहे हैं, "मनुष्य भेड़ के ही समान भटक रहे हैं। आह ! इनको चराने वाला कोई नहीं है। अंधे हुए सभी बलि हेतु वहाँ चले जा रहे हैं जहाँ यम की तलवार की धार लटक रही है।"

तब एक सेवक ने भिक्षु सिद्धार्थ को आते देख दंग होकर राजा के पास आकर कहा, "महाराज ! आपके यज्ञ के हेतु एक महान संत आ रहे

हैं।" नृप यज्ञशाला में खड़े थे जहाँ बंदनवार बँधे थे और ब्राह्मणजन शुद्ध वस्त्र धारण किए मंत्रोच्चारण कर रहे थे। सभी मिलकर बारंबार आहुतियाँ दे रहे थे और मध्य वेदी में धुँआधार अग्नि धधक रही थी। काठ से गंध उठ रही थी जिससे लौ की जीभ लपलपा रही थी, बार-बार बौखला रही थी, धुंधुआ रही थी और घृत की धार पा रही थी। उसे सोमरस भी मिल रहा था जिसे पी इंद्र भी अघा जाता और सभी देवों का अंश उनके पास पहुँच जा रहा था। बधित पशु के रक्त की गाढ़ी लाल धार जमी हुई थी। रक्त की धार बिछे बालू पर वेदी के पार तक थम-थमकर बह रही थी। एक बड़े सींग का बकरा बहुत मिमियाता दिख रहा था जिसको बलि स्थल पर बाँध दिया गया था। उसके कंठ पर एक तेज तलवार तान कर एक ऋषि विधि अनुसार मंत्र बोलने लगे, "हे देवगण ! आप आकर इसे ग्रहण करें। यज्ञ बलि को स्वीकार कर नृप बिंबिसार को हर्षित करें। रक्त को बहता देख आप प्रसन्न हों, पल में जलती आँतों की चर्बी की गंध को सूँघ आप तृप्त हो जायें। मेरे राजा के सिर से सारे पाप उतर जायें और इस हेतु इस बकरे की बलि देता हूँ। सभी देवगण आ अपना-अपना भाग ले जायें।" ठीक उसी समय तथागत नृप के निकट आ तत्काल खड़े हो गए और रोकते हुए बोले, "हे राजन ! इसको मत मारने दो।" बलि पशु के पास जा तुरंत सारे बंधन खोल दिये। उस महातेज के सम्मुख अब कोई क्या बोलता ? फिर शाक्य मुनि ने कहा, "हे नृप ! पूर्ण ध्यान से सुनो। प्राण सभी ले सकते हैं पर कोई प्राण दे नहीं पाता। कोई कितना भी क्षुद्र हो, सबको अपना प्राण प्यारा है जिसे निश्चय ही कोई त्यागना नहीं चाहता। यदि दया का भाव हो तो यह जीवन एक अमूल्य प्रसाद है। इसका प्रभाव सबल और निर्बल दोनों पर दीखता है। दयाभाव निर्बल के लिए जगत की कठोर गति को कोमल कर देता है तथा यह सबल को श्रेष्ठ पथ की ओर ले जाता है। नर स्वयं तो निर्दयी हो जाता है पर अपने लिए देवताओं से दया की भीख माँगता है। स्वयं देवता समान होकर पशुओं और अपने से निरीह प्राणियों को कष्ट देता है। जगत में जितने भी

जीव हैं उन सभी का एक ही गोत्र है। जिसको यह ज्ञान है वही श्रेष्ठ है। निरीह, मूक प्राणी मनुष्य पर विश्वास करते हैं। भेड़ तृण खाकर ऊन देती है। ऐसे दयालु, दीन जीव पर मानव घात लगाता है। सारे शास्त्र बताते हैं कि मनुष्य मानव शरीर कैसे पाता है। वह खग, पशु योनि का भोग भोगकर अंततः मानव देह पाता है। पर मनुष्य मानव शरीर पाकर अपने पूर्व योनियों के प्रति दयाभाव और अपना कर्त्तव्य पूर्णतः भूल जाता है। जीव भवचक्र में पड़ अग्निकण के समान फेरे खाता है, कभी निखर कर चमक जाता है तो फिर कभी वह बुझ जाता है। हे नरों में श्रेष्ठ नृप ! यज्ञों में पशु-हनन निश्चय ही पाप है और ऐसा कर जीवन की गति को रोकना अन्याय है। इस जगत में कोई भी जीव रक्त से शुद्ध न हो सका है और न होगा। यदि देवगण दयावान, करुणावान और भले हैं तो फिर रक्तस्राव से कैसे तुष्ट होंगे ? और अगर वे क्रूर हैं तो हम रक्त-दान देकर एवं इन दीन पशुओं को मार कर उन्हें कैसे बहला सकते हैं ? इन प्रकार के विभिन्न कर्मों को कर जो नर विविध पाप करता है उसका कर्मफल एक तिल के बराबर भी इन पशुओं के सिर पर जाकर नहीं टिकेगा। मनुष्य जो करता है वही भोगता है, अन्य कुछ भी नहीं। विश्व-लेख में जो लेखा-जोखा लिखा जाता है सिर्फ उसे ही भोगता है। जीवन में जैसे कर्म, वचन और विचार होते हैं, प्रत्येक व्यक्ति उसी के अनुसार भली या बुरी गति प्राप्त करता है। यह नियम नित्य व अटल है। इसमें कोई भेद-भाव नहीं है और यह अविराम भी है। जिसे भावी कहते हैं वह भी कर्म का ही परिणाम है।"

सभी ने शाक्य मुनि की यह स्पष्ट, खरी, करुणामयी दयापूर्ण वाणी सुनी। ब्राह्मणों के रक्त से रंगे हाथ ढँके हुए थे। उन्होंने भी सिद्धार्थ की छवि देखी। उन सभी से आगे नृपपाल सादरपूर्वक सहमे खड़े थे। सभी की ओर देख शाक्य मुनि फिर से कहने लगे, "बंधुवर ! यह धरती कितनी सुन्दर होती अगर सभी जीव परस्पर प्रेम में बंधे जीवन-यापन करते ?

यत्न करके अगर मनुष्य इस प्रकार हत्या कर नहीं खाता तो सभी का भोजन कितना रक्तहीन, निरामिष तथा सुखकर होता ? अमृत तुल्य फल, कनक के समान अन्न तथा सलोने साग होते जो सभी के हितार्थ धरती के कोने-कोने में उपजते।" इन सारी बातों को सुन सभी ने सहमकर सिर नवाया। प्रभु के प्रेमपूर्ण उपदेश तथा उपस्थिति से वहाँ पर सभी पर दया-धर्म का ऐसा भाव छाया कि यज्ञ के पंडितों ने यज्ञ-अग्नि जहाँ-तहाँ बिखेर दी और हाथों से तलवार दूर फेंक दिया।

अगले दिन राजा ने देश में डौंडी पिटवाकर घोषणा की और शिला पटल तथा खंभों पर खुदाई करवाई, "महाराज आज इस प्रकार अनुशासन की घोषणा कराते हैं - यज्ञों में बलि और भोजन हेतु अब तक विविध अबल पशुओं का घर-घर वध होता रहा पर अब से कोई भी नर-नारी रक्त नहीं बहायेगा। सभी का जीवन एक समान होता है और इस जीवन को ऐसा ही मानो। दयावान को ही दया मिलती है यह निश्चय जानो।" उस दिन से गंगा तट पर और पूरे देश भर में जगह-जगह पर शुभ और सुन्दर शिलालेख लगाए गये। जहाँ-जहाँ भी जा शाक्य-मुनि ने दया का मंत्र सुनाया पशु, पक्षी एवं नर के बीच पूरा प्रेम और सुख छा गया। तथागत की उन सभी जीव धारियों पर भारी दया रही जो बेचारे सुख-दुख के एक सूत्र से बँधे हुए थे तथा मुक्ति हेतु जग में नाना यत्न करके थक गए थे।

ब्राह्मण का शरीर-दान

जातक में एक पुरानी कथा लिखी है। अपने एक पूर्व जन्म में बुद्ध एक अति ज्ञानी ब्राह्मण थे जो 'दालिद्द' गाँव की ऊँची शिला पर रहते थे। एक बार पूरे देश में भारी सूखा पड़ गया। धान खेतों में ही मर गया। घास, पात, तृण, लता सभी जलकर नष्ट हो गए। सभी तालाब, पोखर जल-विहीन सूख गये और जो पशु-पक्षी बचे वे बड़े ही विकल थे। उनका अंग-अंग दुखी था।

एक दिन बुद्ध सूखे नाले के किनारे से जा रहे थे जब उन्होंने पत्थरों पर एक भूखी बाघिन को पड़े देखा। उसके नयन ज्योतिहीन हो धँस गए थे, मुँह खुला था तथा वह हाँफ रही थी। उसकी जीभ बाहर निकली थी तथा वह तड़प रही थी। उसका संपूर्ण शरीर कमजोरी से काँप रहा था। उसका चमड़ा पसलियों से चिपक गया था जैसे वर्षा से जर्जर हो छप्पर बाँसों के बीच धँस जाता है। भूख से त्रस्त उसके दो बच्चे उसके थन को मुँह में लेकर खींच रहे थे पर उनसे दूध की एक भी बूँद नहीं निकल रही थी। अपने बच्चों को छटपटाती देख माता सिर झुकाए उन्हें स्नेह से आगे सरकाकर आशा लगाकर चाट रही थी। बच्चों के प्रेम के आगे अपनी भूख भूल गई थी। अब गर्जन कहाँ था ? ममता की मारी बिलख उठी। उसकी यह दशा देख बुद्ध निज तन-मन भूल गए। अपनी करुणा की सहज वृत्ति वश चिंतन करने लगे, "इस वन की हत्यारी की कैसे भलाई करूँ ? मुझे केवल एक उपाय दिखाई पड़ रहा है। दिन डूबते, मांस के बिना तीनों मर जायेंगे और इन पर कोई दया करे ऐसे प्राणी अब कहाँ मिलेंगे ? जिन्हें रक्त की प्यास और मांस की भूख सताती है उन पर जग में किसी को दया नहीं आती है। इनके सम्मुख अगर मैं अपना तन डाल दूँ तो इस क्षण मेरी छोड़कर किसी और की कोई हानि नहीं होगी और ऐसा करने में मुझे भी अपनी कोई क्षति नहीं दिखती। अतः मैं इन जीवों के प्रति अपना प्रेम क्यों न निबाहूँ ?" ऐसा कहकर उन्होंने अपना दुपट्टा एक ओर रख दिया और पगड़ी भी उतार दी और बाघिन के सम्मुख निडर होकर खड़े हो गए। बोले, "माता ! यह मांस लो, मैं तुम्हारे ही हित आया।" भूखी बाघिन उनपर झपटी और उनको तुरंत गिरा दिया। कुटिल नखों से तन को फाड़ा, मुँह लगाया और रक्त में दाँत भिगोकर मांस को खूब आनन्दपूर्वक खाया। हिंसातृप्त उस पशु की सांसें सिद्धार्थ के अंतिम प्रेममय तेज सांसों में खो गईं।

इस प्रकार बुद्ध का ह्रदय सदैव ही बड़ा उदार रहा। पशुबलि रुकवा

कर उन्होंने दया और धर्म का प्रचार किया। राजा बिंबिसार ने राजकुमार सिद्धार्थ के वंश और उनके अमित, अपार त्याग को जानकर उनसे बारंबार इस प्रकार विनती की, "राज-परिवार में जन्म लेकर इतने कठिन नियम क्यों निभाते हो ? राजदंड धारक करों में भिक्षापात्र शोभा नहीं देता। चलो ! रहो मेरे पास, मेरी कोई संतान नहीं है। जब तक जीवन है तब तक तुम प्रजा को सद्ज्ञान की सीख दो और मेरे सुंदर राजमहल में अपनी पत्नी के साथ निवास करो।" यह सुन संकल्प में दृढ़ सिद्धार्थ ने सोल्लास बताया, "हे उदार नृपति ! ये सारी वस्तुएँ मुझे भी सुलभ रही हैं पर मैंने सत्य-पथ की खोज हेतु घर-द्वार त्याग दिया है। सत्य को खोजता रहा हूँ और चित्त लगाकर खोजता रहूँगा। कोई इन्द्र का पूरा राजपाट भी लाकर दे दे तब भी मैं अपनी इस खोज को जारी रखूँगा। इस रत्नमंडित द्वार पर मुझे लेने अप्सरायें भी आयें तब भी मैं अपने संकल्प से नहीं टलूँगा। धर्म-भवन के निर्माण हेतु अब मैं गया के उन घने वनों की ओर जा रहा हूँ जहाँ पर मुझे बोध बुला रहा है। ऋषियों के संग रहकर मैंने सारे शास्त्र-पुराण पढ़ डाले हैं; नाना भाँति के व्रत किए हैं और क्लेश उठाया है पर अब तक मुझे सत्य की ज्योति नहीं मिल सकी है। किन्तु मेरा मन कहता है कि सत्य की ज्योति अवश्य ही कहीं न कहीं विद्यमान है। अगर वह मिली तो मैं यहाँ लौट कर आऊँगा और हे नरेश ! मैं उस प्रेम का फल अवश्य लाकर दूँगा।"

न्यायप्रिय राजा ने बुद्ध की तीन बार प्रदक्षिणा की और तथागत की चरणधूलि माथे पर लगा उन्हें विदा किया। राजा से विदा लेकर शाक्य-मुनि उरूविला की दिशा में चल पड़े। तपस्या से उनका बदन पीला पड़ गया था और शरीर मुरझा गया था पर अभी तक की अपनी खोज से उन्हें संतोष नहीं मिला था। उनके प्रस्थान की बात सुनकर पंचवर्गी भिक्षुगण तथागत के पास आए और उन्हें बहुत रोकना चाहा पर सिद्धार्थ समझने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने शाक्य-मुनि को समझाने की कोशिश की,

"सारी बातें तो किताबों में लिखी हैं, उन शास्त्रों को उठाकर क्यों नहीं पढ़ते हो ? सुनो, कोई भी मुनि आज तक श्रुतिज्ञान से आगे नहीं बढ़ पाया है। हमारा ज्ञानकांड महान ज्ञान देता है और क्षुद्र मनुष्य उससे बढ़कर और क्या जान सकेगा ? ब्रह्म निष्क्रिय अर्थात् क्रियाहीन है तथा सर्वगत, सबों में विद्यमान, सच्चिदानन्द, अपरिणामी एवं निर्विकार है। वेद कहते हैं कि राग त्याग कर, कर्म का नाश कर, अहंकार से विमुक्त हो जीव बंधन काट डालता है और हम क्रमशः उस निरोग प्रकाश, परमब्रह्म में मिल जाते हैं। अगर तुम ब्रह्मविद्या पढ़ोगे तो फिर तुम ये सारी बातें जानोगे कि जीव असत्य से सत्य की ओर कैसे चला जाता है और किस प्रकार विषयों का द्वन्द्व छोड़कर पुनः चिर शांति पाता है।"

उनकी बातों का शाक्य मुनि पर कोई असर नहीं हुआ और वे चुपचाप शीश नवाये उरूविला की ओर पाँव बढ़ा चल दिए क्योंकि उनका कष्ट अभी तक नहीं मिटा था।

षष्ठ सर्ग
तपश्चर्या

यदि तुम देखना चाहते हो कि अंततः बोधि-ज्योति कहाँ प्रकाशित हुई तो 'सहस्त्र उद्यानों' की स्थली पहुँचकर उत्तर-पश्चिम दिशा में तब तक चलते जाओ जब तक गंगा की घाटी में तुम्हारे पाँव उन पहाड़ियों पर न पड़ें जहाँ से 'निरंजना' और 'मोहना' नदियों की पतली धाराएँ निकलती हैं। इन दोनों नदियों का अनुसरण करते हुए घुमावदार मार्ग, चौड़े पत्तों वाले महुआ के वृक्षों के नीचे और बेर तथा झाड़ियों के जंगलों से होते हुए तब तक चलते रहो जब तक इन दोनों चमकती हुई बहनों का समतल भूमि पर फल्गु में मिलन नहीं हो जाता।

गया और बराबर पहाड़ी की शुभस्थली पहुँचने पर फल्गु नदी के किनारे एक काँटों भरी खुली धरती है। यहाँ के बालू के पहाड़ों और टीलों की सुषमा दर्शनीय है। इस स्थान को प्राचीन काल में उरूवेला के नाम से जाना जाता था। इसके दूसरे छोर पर वृक्षों से झूमता वन दिखाई पड़ता है जिसकी छाया में हरे-हरे घास लहलहाते दृष्टिगत होते हैं। वहाँ नीले और सफेद कमल के फूल खिलते हैं तथा वहाँ कछुए और तेजी से चलने वाली मछलियाँ रहती हैं। उनके संग बगुलों और सारस की भीड़ भी रहती है। कुछ दूरी पर ताड़ के वृक्षों के बीच कुछ फूस के छप्परों के घर दिखते हैं, जहाँ 'सेनग्राम' स्थित है। वहाँ के कृषक संतोषपूर्वक जीवन यापन करते हैं, परिश्रम करते हैं और फिर थककर सुख की नींद सोते हैं। ग्राम प्रमुख का नाम 'सेनानी' है और उसी के नाम से गाँव का नाम भी जाना जाता है। उस वन और गाँव के बीच के एकान्तवास में बुद्ध एक बार फिर से मनुष्य के कष्टों पर सतत् गंभीर चिंतन में रत हैं। प्रारब्ध व कर्मों की अटपटी गति, मनुष्य के हर कष्ट, शास्त्रों में दिए गए ज्ञान, वन में रहने वाले पशु-पक्षियों से प्राप्त शिक्षा, उस शून्य के रहस्य पर जिससे सभी

की सृष्टि होती है तथा वह शून्य जहाँ अंततः सभी को जाना है, इन सभी विषयों पर ध्यान-चिंतन कर रहे थे। जीवन के संघर्ष से होने वाले परिणाम तथा उससे बढ़ती हुई कर्मों की लड़ी, आगम-निगम के सभी सिद्धांत तथा सभी जीवों की अपार पीड़ा पर ध्यान करते थे। दो अव्यक्त शून्यों के बीच जीवन वैसे ही व्यक्त है, जैसे आकाश में दो बादलों के बीच सतरंगी इन्द्रधनुष फैला रहता है।

लगातार कई मासों तक भिक्षु सिद्धार्थ जंगल में ध्यानमग्न बैठे रहे। चिंतन की प्रक्रिया सूर्योदय तथा दोपहर से भी आगे खिंच जाती थी। भोजन करना भूल जाते थे तथा उनका भिक्षापात्र खाली ही रह जाता था। उन्हें विवश होकर बंदर तथा पक्षियों द्वारा वृक्षों की डालियों से गिराए गए फल खाकर ही रहना पड़ता था। इस कारण वे क्रमशः कमजोर होने लगे। उनकी लालिमा जाती रही। उनका शरीर आत्मा के बोझ से जर्जर होकर उन बत्तीस चिन्हों को खोने लगा जो बुद्ध के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। वे वसंत ऋतु की मनोरम छटा से अनभिज्ञ हैं। जिस प्रकार ऋतुराज वसंत के लहलहेपन से सूखे पत्ते कोसों दूर होते हैं उसी प्रकार तप में चूर बुद्ध अपने पिछले निजी रूप से भिन्न हो गये जब वे राज्य में यौवन के खिले युवराज थे। एक दिन वे घोर तप से मूर्छित होकर अकस्मात् मृतक समान सकल चेतना त्याग धरती पर गिर पड़े। लगा मानो न तो सांस है और न रक्त का संचार ही। देह पीली पड़ गई थी और वे निश्चल थे। उसी समय उस मार्ग से एक गड़रिया निकला और वहाँ उसने सिद्धार्थ को विकल-बेहाल देखा। दोनों नयन मूँदे थे, अधर पर तीव्र पीड़ा दिख रही थी और मध्याह्न की तपती धूप सिर पर पड़ रही थी। यह देख वह जामुन की हरी डालियाँ लाया और मुख पर उनसे ही छाया बना दी। दूर से मुँह में तत्काल उष्ण दूध दूह दिया क्योंकि वह शूद्र था अतः बुद्ध का भाल छूने का साहस कैसे करता ? नया जीवन पा जामुन की डाली तुरंत पनप उठी और कोमल फूलों तथा फलों के गुच्छे उग

आये। वे फूल और फल एक दूसरे से निकट जुड़ गए और पूरी पर्णशाला एक तसर से बने विशाल शिविर की तरह लगने लगी जिसमें कई प्रकार के रंग बिरंगी झालर सजे हुए थे जो सोने और चाँदी के सुन्दर नक्काशी समान लग रहे थे। बालक ने उनको कोई देवता मानते हुए उनकी सेवा सुश्रुषा व आराधना की। शक्ति प्राप्त कर सिद्धार्थ स्वस्थ हो उठे और चरवाहे से लोटे का दूध मांगा, "लोटा भर दूध दे दो भाई !" "गुरूवर ! मैं आपको कैसे दे सकता हूँ ?" उस लड़के ने कहा, "आप स्वयं देख सकते हैं कि मैं एक अधम शूद्र हूँ, आप ऊँची जाति के हैं और मेरा स्पर्श वर्जित है।" तब सर्व संसार में सम्मानित ने कहा, "कैसी बात करते हो भाई ? याचना और दया के नाते सभी जीव एक समान भाई-भाई हैं। दया और करुणा सभी को एक स्तर पर ले आते हैं तथा लहू में कोई वर्ण भेद नहीं होता। सभी के लहू का रंग एक ही होता है। आँसू की कोई जाति नहीं होती है। सभी के गिरते आँसू का स्वाद नमकीन होता है। कोई इंसान जन्म के समय अपने ललाट पर तिलक लगाए हुए नहीं आता है और न ही गर्दन में पवित्र यज्ञोपवीत के सूते के साथ जन्म लेता है। जो सद्कर्म करता है वही इस जग में द्विज है, जो बुरे कर्म करता है वही अधमी है इसमें कोई संशय नहीं है। मुझे पीने के लिए दूध दे दो, मेरे भाई ! अपने मन से यह विचार भेद त्यागकर दूध दे दो, जब मैं अपनी खोज प्राप्त कर लूंगा और सफल हो जाऊँगा तो उससे तुम्हारा भी कल्याण होगा।" सिद्धार्थ का ऐसा सुमधुर वचन सुन उस चरवाहे का हृदय प्रसन्न हो गया और उसने उन्हें लोटा भर दूध दे दिया और स्वयं को कृत-कृत मानने लगा।

तपश्चर्या-त्याग

वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ ध्यान में बैठे थे। उधर से नूपुर बजाती हुई इन्द्र-मंदिर की देवदासियाँ गुजरीं। मुदित मन के साथ उनका समूह, कृत्रिम ढंग से नृत्य करता हुआ उस रास्ते से होकर आगे चला गया।

उनके अनेक संगीतज्ञ साथी भी साथ थे जो गले में ढोल डाले हुए थे। उन ढोलों में मोर पंख लगे हुए थे। एक बाँसुरी पर सुरीली तान भर रही थी और एक अन्य के हाथ में तीन तार वाली बीन थी। वे सभी अपना साज-बाज लिए किसी उत्सव में जा रहे थे। वे अटपटे ढंग से बातचीत करती हुई, पग से ठुमकती हुई जा रही थीं। उनके गोरे-गोरे पाँवों से पायल और घुंघरू की मंद-मंद रसभरी झंकार निकल रही थी। करों के कंगन और कमर की कमरधनी भी बार-बार एक संग खनक उठती थीं। एक के हाथ में सितार था जिसके तारों पर उंगलियाँ बार-बार चल रही थीं। उसने तार पर अलबेली मृदु तान छेड़ी और अपनी गति के अनुसार यह गा उठी, "सितार और बीन के तार तुम ठीक रखो। न तो ऊँचा रखो और न नीचा जिससे रंग ठीक से जम सके और हम गायें और लोगों को रिझाकर संपूर्ण संसार को वश में कर लें। अगर तार को बहुत कस दिया जाता है तो तार टूट जाता है। ढीला तार गूंगा होता है और संगीत मर जाता है। सितार का सुर न तो नीचा करो और न ऊँचा।" इस प्रकार वे नर्तकियाँ बाँसुरी और तारों पर गातीं किसी रंगीन, घमंडी तितली की तरह फड़फड़ाती हुईं जंगल के खुले मैदान में बने मार्ग पर जा रही थीं। उस सुन्दरी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसके ये तुच्छ शब्द प्रतिध्वनित होकर उस धर्मात्मा पुरुष के कानों पर पड़ रहे हैं जो मार्ग के बगल में अंजीर के वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन बैठे थे। सिद्धार्थ ने आँखें खोलकर देखा; फिर अपने विशाल भौं को ऊपर उठाया और कहा, "मूर्ख भी बहुधा विद्वानों को शिक्षा दे जाते हैं। मैं जीवन के इस सूक्ष्म तार को कदाचित उस संगीत की उत्पत्ति के लिए बहुत ज्यादा कस रहा हूँ, जो मेरी और जगत की रक्षा करेगा। अब जब सत्य दिखने वाला है तब मेरी आँखें धुंधली हो गई हैं, मेरी शक्ति क्षीण हो गई है जबकि अभी मुझे शक्ति की सबसे अधिक आवश्यकता है। मनुष्य के रूप में मुझे जो साधन प्राप्त हैं उसे भी गँवा रहा हूँ। इस भाँति तो मैं मर जाऊँगा और कुछ भी नहीं कर पाऊँगा। मेरा यह जीवन जो समस्त मानव जाति के लिए आशा की

एक किरण है वह व्यर्थ चला जाएगा।" उस गीत ने सिद्धार्थ के अंतर्नेत्र खोल दिए। उन्हें पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि शरीर को गलाकर सत्य के दर्शन नहीं हो पायेंगे। अपितु ऐसा करने से सत्य के दर्शन की बची-खुची आशा भी समाप्त हो जाएगी।

सुजाता

सिद्धार्थ के ध्यानस्थल के पास नदी के किनारे एक गृहस्थ रहता था। धैर्यवान, सुकर्म करने वाला, न्यायप्रिय नायक, पवित्र और धनवान, अनेक पशुओं के झुंड का स्वामी, एक सद्पुरुष, अच्छा व्यक्ति, आस-पास के गरीबों का मित्र। उसके गाँव का नाम 'सेन' अथवा 'सेनानी' था। लोग उसे भी सेनानी कहकर पुकारते थे क्योंकि वह 'ग्रामश्रेष्ठी' था। वह खुशीपूर्वक, शांतिमय ढंग से जीवन जी रहा था। उसकी पत्नी सुजाता, उच्च विचारों वाली, रूपवती, गुणवती, सती, भोली, सुकुमारी तथा गौरवमयी गति-मति वाली थी। सभी पर दया दिखाती और अपने प्रिय वचनों से सभी से प्रेम बढ़ाती थी। सुजाता धरती की सर्वसुन्दरी, काली कजरारी नेत्रों वाली, विनीत, सत्यवादिनी, सरल तथा दयालु स्त्रियों में रत्न, शीलवान जो जन-जन का मन मोह लेती थी, अति सुन्दर आकृति वाली गृहिणी थी। सभी के साथ सुमधुर भाषिणी, प्रसन्नचित आभा वाली स्मिता की मोती- अपनी घर गृहस्थी में अपने पति के साथ उस छोटे से गाँव के घर में शांतिपूर्ण सुखमय दिन गुजारती। लेकिन उसे सिर्फ एक दुःख था, उसे संतान का सुख प्राप्त नहीं हुआ था और इसी दुःख से वह सदैव पीड़ित रहती थी। इसलिए वह प्रतिदिन लक्ष्मी की पूजा करती थी और नित्य सूर्य देवता के मंदिर में भी जाया करती थी। बार- बार प्रदक्षिणा कर विनती करती और धूप, गंध और फूल अर्पित कर नैवेद्य चढ़ाती थी। संतान प्राप्ति हेतु उसने अनेक मन्नतें माँगी और देवताओं से प्रार्थना की। अनेक पूर्णिमा की रातों में विशाल शिव लिंग की प्रार्थना की। एक्यासी

बार चावल चढ़ाया और चमेली की फूलमाला के साथ चंदन के तेल के चढ़ावे एवं अन्य चढ़ावों के साथ पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की। फिर उसने प्रण लिया कि अगर उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है तो वह सोने के पात्र में वृक्ष के नीचे, वन देवता को प्रचुर मात्रा में स्वादिष्ट खीर की भेंट चढ़ायेगी। उसकी मनोकामना पूरी हुई। उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। अब वह शिशु तीन महीने का हो चुका था और सुजाता की छाती से चिपका हुआ था। भक्ति से पूर्ण, सारी सामग्री को सजाकर वह मंद-मंद गति से कृतज्ञतापूर्ण कदम रखते हुए निर्जन वन की ओर चली जहाँ वन देवता विराजते थे। एक हाथ से गहरे लाल रंग की साड़ी के आँचल में अपने प्यारे और सुन्दर बच्चे को बड़े ही ध्यान से लपेटकर पकड़ रखा था और दूसरा सुन्दर हाथ ऊपर की ओर अपने माथे पर सोने का कटोरा और सोने की थाली को स्थिर रखने के लिए उठा रखा था। थाली में देवताओं के चढ़ावे के लिए स्वादिष्ट खीर रखी थी। वन देवता के यहाँ पधारने से पहले सुजाता ने अपनी दासी राधा को भूमि साफ करने के लिए तथा झाड़, बुहार और लीपकर उस स्थान को निर्मल बनाने हेतु और वृक्ष के चारों ओर लाल रंग का धागा बाँधने के लिए पहले भेजा। उसने जब देवता के स्थान पर भिक्षु सिद्धार्थ को वृक्ष के नीचे विराजमान देखा तो उत्सुकतापूर्वक दौड़ती, चिल्लाती हुई आई और सुजाता से बोली, "ओ प्रिय मालकिन ! देखिए ! साक्षात वन देवता अपने स्थान पर आसन पर विराजमान हैं। दैवीय ढंग से प्रकट, अपने हाथ घुटनों पर रखे हुए आसन पर ध्यानमग्न हैं। उनके नेत्रों में दिव्य ज्योति है तथा चेहरे पर एक अलौकिक तेज है। वे भव्य भाव से सुशोभित हैं और सौम्यता तथा शुचिता की मनोहर मूर्ति हैं। देखिए कैसे उनके भौं पर प्रकाश चमक रहा है ! नैसर्गिक नेत्रों के साथ वे कितने कोमल तथा महान लग रहे हैं ! अहोभाग्य है ऐसे देवताओं से मिलना। हे स्वामिनी ! कलियुग में भी यह सच्चाई प्रकट हो गई है अन्यथा बहुत भाग्यवान को ही देवता के दर्शन होते हैं।" सुजाता ने सिद्धार्थ को ईश्वरीय शक्ति का प्रतिरूप वन देवता

माना और डरती, कांपती हुई उनके निकट आई। धरती को चूमते हुए श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर कहा, "हे वन के रक्षक देव ! हे अमित शुभ फल दाता ! जैसे दर्शन दे आपने इस दासी पर कृपा की उसी प्रकार पत्र-पुष्प ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिए। आपके लिए बहुत यत्न से खीर बनाई और यह कपूर समान श्वेत खीर आपके लिए लाई हूँ। आप जो परम पवित्र हैं, इस उद्यान में विराजमान रहकर सभी का भला करते हैं, अपनी इस दासी पर दयावान हों। अपनी उपस्थिति से आपने मुझे निर्भीक किया है।" ऐसा कहकर उसने सोने के पात्र में खीर और ऊपर से दूध डाल दिया और उस सोने के कटोरे को सिद्धार्थ की ओर बढ़ा दिया। फिर चंदन-गंध चढ़ाकर फूल माला पहनाई और सिद्धार्थ के हाथ पर स्फटिक बोतल से अतर डाल दिया, वह अर्क जो गुलाब के फूलों से निकाला गया था। सिद्धार्थ ने बिना कुछ बोले उस पवित्र खीर को ग्रहण किया। प्रसन्न माता श्रद्धाभाव से बगल में भक्ति भाव से शीश नवाए खड़ी रही। उस खीर में इतनी आश्चर्यजनक पवित्रता थी कि शाक्य मुनि ने अपार नूतन शक्ति महसूस किया, उनकी शक्ति लौट आई और खीर खाकर वे प्रसन्न हो गये। तन में फिर से पूरा बल वापस आ गया। मानो जीवन लौट आया। जगाने वाली रातें और उपवास के दिन इस प्रकार बीत गए हों जैसे वे स्वप्न हों, मानो आत्मा ने भी शरीर के साथ-साथ उस सुभोजन को स्वीकार किया हो और जैसे पक्षी को नए पंख लग गए हों। उनकी स्थिति एक प्रसन्न पक्षी की तरह हो गई जिसे रेगिस्तान में झरना दिख जाता है, अथाह रेत के ऊपर न समाप्त होने वाली उड़ान से थक कर रेगिस्तान में गर्दन से सिर तक बालू से ही स्नान करता हुआ पक्षी अकस्मात् झरने पर पहुँच जाता हो। इस प्रकार सुजाता ने राजकुमार सिद्धार्थ की पूजा की। जब तन में बल आया तब चित्त भी फड़कने लगा और वह धीरे-धीरे गूढ़ विषय-मंथन की ओर फिर से सरकने लगा। जैसे-जैसे तथागत के मुखमंडल की मनोहर कांति बढ़ती गई, वैसे-वैसे सुजाता खड़ी-खड़ी दुगनी, तिगुनी प्रार्थना करने लगी। उनका चेहरा देदीप्यमान होते तथा

आभा को विकसित होता देख सुजाता ने सिद्धार्थ से पूछा, "क्या आप सचमुच देवता हैं ? क्या मेरी भेंट स्वीकृत हो गयी है ?" तब सिद्धार्थ ने पूछा, "यह क्या है जिसे तुम मेरे लिए लाई हो ?" "पवित्र आत्मा !" सुजाता ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "अपने गायों के झुंड में से मैंने सौ नए बछड़े जने माताओं का दूध लिया, उस दूध को पचास श्वेत गायों को पिलाया, उनके दूध को पचीस को और उनके दूध को फिर अन्य बारह को और अंततः उनके दूध को छः सर्वश्रेष्ठ उत्तम गायों को पिलाया। इन सर्वश्रेष्ठ गायों के दूध में मैंने केसर, चंदन, मेवा तथा सर्वश्रेष्ठ मसाले डालकर उसमें चुने हुए बीजों का श्रेष्ठ चावल डालकर पकाया। इस बासमती चावल को बहुत ही सुन्दर ढंग से नए सुन्दर खेतों में उगाया गया था, चावल का हर दाना मोती जैसा है। सच्चे और पवित्र हृदय से मैंने यह खीर बनायी, क्योंकि मैंने आपके वृक्ष के नीचे प्रण लिया था कि अगर मुझे पुत्र रत्न प्राप्त होता है तो मैं वृक्ष देवता की प्रसन्नता के लिए खीर भेंट चढ़ाऊँगी। अब मेरा एक छोटा सा पुत्र है और मेरा सारा जीवन सुख से भर गया है।" कोमलता पूर्वक सुजाता ने अपने लाल रंग के वस्त्र के किनारे को नीचे खींचा और अपने पुत्र को सिद्धार्थ के सामने धरती पर रख दिया। भुवन-उद्धारक ने उस छोटे से बालक के सिर पर उन हाथों को रख दिया जो सदैव संसार की मदद करते हैं और कहा, "तुम्हारा परम आनन्द चिरस्थायी हो ! तुम्हारा सुख नित्य निरंतर बढ़ता रहे। मेरा आशीर्वाद है कि इस जीवन में सिर्फ हल्का सा भार इस बालक पर पड़े। मैं देवता नहीं हूँ पर तुमने मेरी सेवा की है, मैं भी तुम्हारा एक और भाई हूँ जैसे तुम्हारे अन्य भ्राता हैं जो अब तक एक राजकुमार था लेकिन अब एक घुमक्कड़ संन्यासी है जो दिन-रात उस प्रकाश की खोज और चिंतन में लगा है जो सभी मनुष्यों के जीवन में नई जागृति लायेगा और उनके जीवन को प्रकाश से भर देगा। मुझे लगता है कि निश्चय ही वह ज्योति कहीं जलती है जिसे अगर हम देख लेंगे तो संसार का अंधकार मिट जाएगा। मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि अब मुझे वह ज्योति प्राप्त होगी।

मैं उस प्रकाश को खोज लूँगा। जब मेरा कमजोर शरीर हार गया तब तुम्हारे पवित्र संजीवनी समान खीर ने इसे नूतन जीवन शक्ति दे इसे स्वस्थ कर दिया।"

जीवन का क्रम अनेक योनियों में ऊपर-नीचे होते हुए चलता है और अनेक जन्मों के अंतराल के बाद कहीं जाकर जीव को उच्च गति प्राप्त होती है। बहन ! तुमने मेरे गिरते तन-मन को सहेजा। तुझे साधुवाद है, लेकिन क्या तुम्हें सचमुच केवल जीवन जीने में सुख मिलता है ? क्या गृह सुख में निमग्न रहकर तुम संतोषपूर्वक रहती हो ? क्या मन में और कोई उच्च चाह नहीं उठती है ? सुजाता ने उत्तर दिया, "पूजनीय ! हे महात्मन, सुनिये ! इस नारी का हृदय छोटा है और बारिश की थोड़ी सी मात्रा, जो मुश्किल से किसी खेत को गीला कर सकती है इस कुमुदिनी फूल के पात्र को भर देती है और वह कुमुदिनी लहलहा उठती है, यह मेरे लिए पर्याप्त है। मैं चाहती हूँ कि सूर्य देवता की कृपा और उनकी आभा मेरे परिवार पर सदैव बनी रहे और मेरे पति तथा कमल समान शिशु के मुख पर सदैव मुसकान बनी रहे। हे नाथ ! मेरे जीवन का यही मधुकाल है। मुझे मेरे घर-बार का जंजाल मग्न रखता है। मैं अपने पति की खुशी और बच्चे की मुस्कान में जीवन के सूर्य की चमक पाती हूँ। अपने घर को प्रेमाश्रम बनाकर घर-गृहस्थी के कार्यों को करते मेरे दिन खुशीपूर्वक बीत जाते हैं। सूर्योदय के समय मैं उठती हूँ, देवताओं एवं सूर्य देवता की वंदना करती हूँ, नहा-धोकर पूजा करती हूँ और फिर कुछ अन्न दान करती हूँ। दोपहर में जब मेरे स्वामी घर लौट भोजनोपरान्त विश्राम हेतु पैर पसार, सिर को मेरी गोद में रखकर विश्राम करते हैं तो मैं मधुर संगीत गाकर उनका मुख निहारते हुए पंखा झलकर उन्हें सुलाती हूँ और ऐसे ही शांत संध्या बेला में रात्रि भोजन के समय जब वे घर में भोजन करने बैठते हैं तो मैं उन्हें नाना प्रकार के व्यंजन परोसती हूँ और उनके बगल में खड़ी होकर उन्हें भोजन कराती हूँ और इससे मुझे अनंत सुख की अनुभूति होती

है। प्रसंग देखकर कुछ रसपूर्ण बातें करती हूँ और फिर शिशु को गोद में ले सुख की नींद सो जाती हूँ। अब मेरे लिए जग में कौन सा सुख प्राप्त करना शेष रहा ? मेरे घर में ईश्वर की कृपा से किसी चीज की कमी नहीं है। अपने पति को पुत्र का जन्म देकर मेरा जीवन सार्थक हो गया जिसके हाथों पिंडदान पाकर वे सुरधाम का सुख भोगेंगे। धर्मशास्त्र और पुराण कहते हैं कि जो दूसरों का दु:ख हरते हैं या जो सड़कों पर पथिकों को छाया देने के लिए वृक्ष लगाते हैं, कुएँ-तालाब खुदवाते हैं या अपने कुल वंश को चलाने के लिए पुत्र जन्म देते हैं, ऐसे व्यक्ति सुगति पा उत्तम लोक जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है। जो ग्रंथों में लिखा है मैं उसे मानकर चलती हूँ पर क्या मुनियों से बढ़कर बात समा सकती हूँ ? उन मुनियों के सम्मुख साक्षात देवतागण आए। उन्होंने ही यहाँ मंत्र, शास्त्र तथा पुराण बनाए। वे धर्म का तत्व पूर्ण प्रकार जानते रहे और उन्होंने सभी प्रकार के विषय-विकारों को त्यागकर शांति का मार्ग खोज निकाला। यह बात मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि सभी काल में और सभी स्थान पर भला का फल भला और बुरे का बुरा होता है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। मीठे बीज बो कर हम मीठे फल प्राप्त करते हैं और विषैला बीज पनप कर सदा कटु फल ही देता है। यहीं पर सामने ही दिख जाता है कि जिस प्रकार द्वेष से बैर उपजता हुआ दिखता है उसी प्रकार शील से मृदु मित्रता का जन्म होता है। जब हम यह तन छोड़कर इस जगत से चले जाते हैं तब पता नहीं क्या-क्या होता है ? लेकिन जिसे इस लोक में भला मिलता है उसे परलोक में भी भला ही मिलना चाहिए। खेत में वही उपजता है जो बोया जाता है। धान का कण सहस्र कणों में बदल जाता है। संपूर्ण चंपा के फूलों का सुनहला रंग और उनका विस्तार एक बिंदी सी कली में पूर्ण प्रकार छिपा रहता है। यहाँ धरती पर जब कभी किसी पर आपदा आई तो धैर्य टूट जाता है जैसे अगर कहीं मेरा यह प्राण प्रिय लाल मर जाए तो मेरा हृदय तुरंत ही टूट जाएगा। मेरे हृदय के निश्चय ही दो टुकड़े हो जायेंगे और अपने शिशु को गोद में रखकर मैं

परलोक चली जाऊँगी और वहाँ जाकर अपने पति की तब तक बाट जोहती रहूँगी जब तक उनकी अंतिम घड़ी नहीं आ जायेगी। किन्तु अगर मेरे सामने ही मेरे पति का स्वर्गवास हो गया तो फिर उनके सिर को गोद में रखकर मैं भी चिता पर चढ़ जाऊँगी। जब चारों ओर अग्नि की ज्वाला दहक उठेगी और कुंडली मारे धूआँ चारों ओर छा जायेगा तब मैं अपने अंग-अंग से फूली नहीं समाऊँगी। पुराणों और शास्त्रों में यह बात लिखी है कि अपने पति के साथ जो स्त्री मृत्यु का वरण करती है उसके पुण्य प्रताप से उसके पति को स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है। उनके साथ वह वहाँ पर विविध प्रकार के सुखों का भोग करती है। कितने वर्षों तक? पत्नी के सिर में जितने बाल होते हैं उतने करोड़ों वर्षों तक वह सुखभोग करती है। इसलिए मेरे हृदय में चिंता की कोई बात रहती ही नहीं है और मेरा जीवन रात-दिन सानंद बीत रहा है। किन्तु मैं सुख में लीन होकर उन दीन-दुखियों को भूल नहीं पाती जो अपार कष्ट सह रहे हैं। मैं परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि वे उन पर भी दया करें। मुझसे जितना बन पड़ता है उतना मानकर मैं अपनी बुद्धि से सभी का भला करती हूँ। इस प्रकार का विश्वास कर मैं धर्म के मार्ग पर चल रही हूँ कि इन सभी से भला ही होगा, हानि तो कदापि नहीं होगी। रात्रि के आगमन पर विश्राम करने हेतु जब तारे अपने चाँदी के दीये जला देते हैं तो मंदिर में स्तुति और अपने मित्र मंडली से गप-शप करने के बाद मैं सोने चली जाती हूँ। इतनी कृपा पाकर भी मैं कैसे खुश न होऊँ ? जो पुस्तकें कहती हैं उन्हें मैं नम्रभाव से स्वीकार करती हूँ। प्राचीन काल के मनीषियों की तुलना में मैं ज्ञानी नहीं हूँ जो ईश्वर के सम्पर्क में थे और जिन्हें स्तुतिगान, मंत्र और सम्पूर्ण धर्म के मार्ग तथा शांति का ज्ञान था। मैं यह भी समझती हूँ कि अच्छाई से सुख अवश्य आएगा और बुराई से दुःख। स्वस्थ बीज से मीठे फल उगते हैं और जहरीले फूलों से कड़वी चीजें।" यह सब सुनकर भिक्खु सिद्धार्थ ने कहा, "तुम उन्हें शिक्षा दे रही हो जो दूसरों को शिक्षा देते हैं, ज्ञान से भी अधिक ज्ञान की बातें अपनी सरल जनश्रुति

की भाषा में कह रही हो। तुमने अपने भोलेपन में ही महत ज्ञान बता दिया है। अरे भोली बहन ! तू अति भोली है ! तू अपना धर्म जानती है और अन्य न तो कुछ जानती है और न कहती है एवं अपने जीवन में मग्न रहती है। तुमसे ही मानव मात्र को आशा की किरण दिखती है। तुम जीवन के सत्य को सही ढंग से समझती हो। अतः तुम जब भी चाहो, थोड़े प्रयत्न से जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो सकती हो क्योंकि तुम निरासक्त भाव से अपने कर्त्तव्यों का वहन करते हुए सद्जीवन जी रही हो और जब तक चाहो इस संसार चक्र के खेल में भाग ले सकती हो।" सुजाता की आँखें अपने बालक पर झुकी हुई थीं। बालक ने अपनी मुलायम अंगुलियों को सिद्धार्थ की ओर उठाया जैसा कि बच्चे वयस्कों से अधिक जानते और समझते हैं। उसने भी जगदाराध्य बुद्ध को पहचान लिया था और श्रद्धा से उसने उनकी ओर अंगुलियाँ बढ़ा दी थीं।

बोधिवृक्ष

सिद्धार्थ श्रद्धाभाव के साथ आसन से उठे। उस पवित्र खीर से उनका शरीर बलवान बन गया था। उन्होंने अपने कदम उधर बढ़ाए जहाँ एक विशाल वृक्ष उगा हुआ था, बोधि वृक्ष (आने वाले वर्षों में कभी भी नष्ट न होने वाला और श्रद्धांजलि हेतु सदैव जीवित रखा जाने वाला) जिसके नीचे भविष्यवाणी की गई थी कि बुद्ध को सत्य के दर्शन होंगे। हमारे राजकुमार इसे जान गए थे, इसलिए वे नपे-तुले, अटल, गौरवशाली चाप से बोधि -वृक्ष की ओर अग्रसर हुए।

अरे ! संसार वालों तुम लोग आनन्द मनाओ ! हमारे महात्मा वृक्ष के नीचे पधार गए। जैसे वे खंभे की तरह वृक्षों से ढँके हुए मार्ग से होकर लटके हुए तनों के बगल से इस वृक्ष की तीव्र छाया में पहुँचे, जागृत धरती घास हिलाकर आराधना और अभिनन्दन करने लगी। तत्काल धरती से उनके कदमों के पास सुगन्ध मिश्रित ठंडी हवा बह चली। देवतागण ने

उसे बड़े ही आनन्द से सूँघा। जंगली जानवरों, चीता, सूअर और हिरण की बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक आँखें उन्हें निहारती रहीं। झाड़ी और गुफाओं से सभी जानवर उनके कृपालु चेहरे को शांतिपूर्वक देखते रहे। दो पत्थरों के बीच की ठंडी जगह से चितकबरा भयंकर साँप बाहर निकलकर अपने फन से छतरी बनाकर गुरूदेव के सम्मान में नाचने लगा। नीली, हरी और स्वर्णिम चमकीली तितलियाँ अपने पंखों को फड़फड़ाती हुईं सिद्धार्थ के चारों ओर उड़ती रहीं। क्रूर चील ने सीटी बजाकर अपने शिकार को छोड़ दिया। धारीदार ताड़ के वृक्ष पर गिलहरी एक डाली से दूसरी डाली पर यह देखने के लिए फुदकती रही कि क्या हो रहा है। बया पक्षी अपने झूलते हुए घोंसले से चहचहाने लगे। छिपकली अति आनन्दित हो इधर-उधर दौड़ने लगी। कोयल ने अपनी मधुर तान छेड़ दी और सुरीला गीत गाने लगी। पंडुक चारों ओर उड़ने लगे। यहाँ तक कि रेंगने वाले प्राणी भी सजग और प्रसन्न थे। धरती और हवा ने मिलकर सस्वर आवाज से एक गाना गाया, जिसे जिन कानों ने सुना उन्हें वह छू गया, "स्वामी और मित्र ! प्रेमी और मुक्तिदाता ! आपने क्रोध, अहंकार, इच्छाएं, भय और शंका को अपने वश में कर लिया है। आपने सभी के कल्याण के लिए अपने सबसे प्रियजनों को तथा अपना सर्वस्व त्याग दिया है। आप वृक्ष के नीचे पधारें। उदास धरती आपको आशीर्वाद देती है कि आप, जो बुद्ध हैं वे ज्ञान को प्राप्त करें और समस्त सृष्टि के कष्टों को शांत करें। चलें, आपकी जय हो ! सम्माननीय ! हमारे लिए अपने इस अंतिम जीवन चक्र के अंतिम जीवन का श्रम कीजिए। राजा और महान विजेता ! आपका समय आ गया है। यही वह रात्रि है जिसकी सदियों से प्रतीक्षा थी। संपूर्ण सृष्टि इस पल की युगों-युगों से प्रतीक्षा कर रही थी।"

जब मार-विजयी तथागत वृक्ष के नीचे बैठे तब रात्रि हो आई। लेकिन अंधकार का राजकुमार, मार, जानता था कि ये बुद्ध हैं जो ज्ञान प्राप्त कर सभी का उद्धार करेंगे। समय आ गया था जब वे सत्य की खोज

कर लेंगे और संसार की रक्षा करेंगे। वह नहीं चाहता था कि सिद्धार्थ को सत्य के दर्शन हो सके। अत: उसने अपनी सभी आसुरी शक्तियों को आदेश दिया और वे तुरंत प्रकट हो सक्रिय हो गईं। प्रत्येक गहरी खाई से पिशाच, दुष्ट आत्माएं जो ज्ञान और प्रकाश के साथ युद्ध करती हैं, आरती, तृष्णा, राग और उनका जनसमूह तुरंत उपस्थित हो गया और मार के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। प्रेम, रति, घृणा, अज्ञान एवं तीव्र लालसा का अंधकार और भय सभी बुद्ध से घृणा करते हुए चेष्टा करने लगे कि किसी प्रकार उनके मन को विचलित कर सकें। कोई नहीं जानता है, यहाँ तक कि सर्वश्रेष्ठ विद्वान भी नहीं कि किस प्रकार उस रात नरक के राक्षस, प्रेतों ने सारी रात संघर्ष किया कि सत्य को बुद्ध से दूर रखा जा सके, कभी आँधी-तूफान और कड़कती, चमकती, भयानक बिजली के भय के द्वारा तो कभी राक्षसी सेनाओं द्वारा बारूदी आँधी द्वारा सारे आकाश में छाकर, गर्जन द्वारा आँखों को अंधा कर देने वाली रोशनी फेंककर, नोंकदार बरछी द्वारा बैगनी रंग के आकाश को फाड़कर और फिर कभी उन शब्दों द्वारा धोखा देकर जो सुमधुर लगें। यूँ कहें कि कामदेव ने कोई प्रयत्न न छोड़ा कि सिद्धार्थ को उनके दृढ़ निश्चय से च्युत किया जा सके और किसी भी प्रकार उन्हें सत्य के दर्शन न होने दिए जायें। जड़ी-बूटी वाले वृक्षों के शांत पत्तों और मृदुल हवा द्वारा जादू-टोना किया। सुन्दरियों की आकृति द्वारा कामुक भावना एवं प्रेम जगाने का अथक प्रयत्न किया, यदा-कदा राजकीय प्रलोभन देकर, राज्य पर शासन करने का उपहार प्रस्तुत कर, कभी शंका उठाकर, सत्य को व्यर्थ बताकर। यह सब कुछ हुआ पर क्या ये सचमुच में घटित हुए ? क्या ये सभी को दिखे या ये बुद्ध के अन्तर्द्वन्द्व का वृत्तांत है ? "इस विषय में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। आप स्वयं निर्णय लीजिए- मैं वही लिख रहा हूँ जो प्राचीन काल की पुस्तकों में लिखा है।" @ अपने सभी प्रयासों

....

@ एडविन आर्नाल्ड

में असफल होने पर कामदेव ने दसों मुख्य पाप को बुलाया जिनसे मार अपनी शक्ति ग्रहण करता है। बुराई के वे सभी दूत एक-एक कर आये। सर्वप्रथम अहम् का पाप, जिससे सृष्टि में सिर्फ अपना ही चेहरा सुन्दर दिखता है। बुद्ध ने अहम् को विजयी नहीं होने दिया क्योंकि अगर वह विजयी हो जाता तो सारी की सारी सृष्टि नष्ट हो जाती। उसने उपस्थित हो बुद्ध को समझाने के भाव से कहा, "तुम बुद्धत्व प्राप्त कर लेते हो तो आनन्द करो। जो भटक रहे हैं उन्हें भटकने दो। तुम स्वयं स्वच्छन्द रहो। तुम अपने आप में सीमित रहो और उठकर देवताओं से जा मिलो जो दूसरों की जरा भी चिंता नहीं करते और जो निर्द्वन्द्व और अमर हैं। दूसरों को प्रकाशहीन अंधेरे में भटकने और टटोलने दो। इतना पर्याप्त है कि तुम स्थिर, स्थित बुद्ध हो गए हो। उठो और देवताओं के साथ का आनन्द लो जो न बोलते हैं, न सुनते हैं और न ही कुछ करते हैं।" लेकिन बुद्ध ने फटकारते हुए कहा, "तुम्हारा धर्म अधर्म पर आधारित है। तुम्हारी सलाह न्याय विरुद्ध एक शाप है। कपटी ! जो सिर्फ स्वयं से प्रेम करते हैं वे स्वार्थ के लिए कहीं भी, कभी भी बिक जाते हैं।" फिर "विचिकित्सा" आई जो किसी प्रकार की पराजय स्वीकार नहीं करती। वह तथागत के कानों में संशय उभारती हुई बोली, "सभी चीजें असार दिखावा हैं और उनके ज्ञान का वृथा अभिमान करना व्यर्थ है। आप अपनी ही छाया को पकड़ने के लिए उसका पीछा कर रहे हैं। उठिए और चले जाइए। इस "सत्य" आदि के विषय में सोचना माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस मार्ग पर आप जा रहे हैं उस मार्ग पर तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मनुष्य के लिए मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। उस घूमते हुए कर्म-चक्र के पहिए से मुक्ति का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?"

लेकिन बुद्ध ने कहा, "तुम्हारा मुझसे कोई संबंध नहीं है। नकली विचिकित्सा ! मनुष्य की अति सूक्ष्म, धूर्त, शत्रु ! तेरा यहाँ कोई काम नहीं है।" इसके बाद परम मायावी "शीलव्रत परमार्ष" आया जिसने देश-देश

में अनेक पाखंड चला रखा है और जो मनुष्यों को कर्मकाण्डों में उलझा रखता है और उन्हें भ्रमित करता रहता है कि उसके पास स्वर्ग धाम की कुँजी उपलब्ध है। उसने आकर सिद्धार्थ से कहा, "तुम श्रुतिपथ को क्यों लुप्त करना चाहते हो ? देवताओं को बिदाई दे रहे हो और यज्ञ मंडप उजाड़ रहे हो। पवित्र पुस्तकों को निरर्थक, असार साबित करने का, देवताओं को गद्दी से उतारने का, सभी पंडितों का आसन खाली करा उन्हें समाप्त कर देने का क्यों विफल प्रयत्न कर रहे हो ? इसी से तो पंडित पुजारियों की रोजी-रोटी चलती है और देश का शासन चलता है।" लेकिन बुद्ध ने उत्तर दिया, "तू जिसका अनुशरण करने के लिए कह रहा है वह क्षणभंगुर मात्र है, वह एक आकृति है जो चली जाएगी ? लेकिन सत्य स्वतंत्र रूप से खड़ा रहेगा क्योंकि सत्य नित्य, एकरस, अचल और सनातन होता है। यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम यहाँ एक क्षण भी मत रुको। भागकर अब अपने अंधकार में चले जाओ।" फिर सुवेशधारी, छैला, प्रलोभन दिखाता कामदेव, प्रेम का सम्राट जो देवताओं को भी प्रभावित कर डालता है, सभी प्रकार के प्रेम का स्वामी व शासक, हँसते हुए वृक्ष के नीचे आया। अपना स्वर्ण धनुष हाथ में लिए हुए, लाल फूलों की हार गर्दन में डाली हुई, कामनाओं के तीर के साथ आया। यह पाँच काँटेदार ललित अग्नि की ज्वाला वाली तीर जब हृदय में चुभती है तो हृदय को विषैले काँटा से अधिक पीड़ा देती है। उसके साथ उस निर्जन स्थान पर चलती-फिरती सुन्दरियों का समूह आया, नैसर्गिक नेत्र और सुन्दर होंठ वाले, अदृश्य सुन्दर तारों से निकले संगीत पर, शब्दों में प्रेम का गुणगान करते हुए, इतनी मंत्रमुग्ध करने वाली तान कि मानो लगा उसको सुनने के लिए रात्रि थम सी गई हो और सारे चाँद-तारे अपने ग्रह पथ पर स्थिर हो गए हों। चारों ओर से चंद्रमुखी स्त्रियाँ प्रेमपूर्वक नयन मटकाती हुईं, अपने साज के साथ मधुर संगीत मिलाती हुईं, प्रस्तुत हो गईं। वे गीत गाती हुईं सिद्धार्थ को समझाने लगीं "तुझे धिक्कार है कि

तू तरुणियों का हास-विलास भूलकर अपना निजी जीवन बर्वाद कर रहा है ! स्त्री के संभोग से बढ़कर इस संसार में और कोई सुख नहीं है। तुम तीनों लोकों में जाकर देख लो। प्रिय, गुलाबी, सुविकसित पयोधर बड़े ही कीमती रत्न हैं। उनके स्पर्श के सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं है। तुम देखो कि किस प्रकार ये स्त्रियाँ भौंहें और मुँह मरोड़ कर तुम्हारी ओर मुस्करा रही हैं। इन स्त्रियों के अंगों में कुछ ऐसी सुन्दरता दिख रही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ उमंग से भरा हुआ मन स्वत: ही चला जाता है। जो लोग इस लोक में यह सुख भोग पाते हैं उनके लिए स्वर्ग यहीं पर है। इसी हेतु सिद्ध एवं सुज्ञानी बहु भाँति अपने तन को आठों काल तपाते रहते हैं। जब कामिनी अपने भुजपाश में बाँधकर रखती है तब दुख कहाँ से पास फटकेगा ? सारे जीवन का यही सार है। एक मधुर चुंबन के ऊपर सारा जीवन न्योछावर हो जाता है।" इस प्रकार अनेक भाव-भंगिमायें दिखाकर और गीत गाकर ये सारी ललनायें सिद्धार्थ को रिझाने में जुटी रहीं। उनके नेत्रों में मद्य का असर बिल्कुल स्पष्ट दिख रहा था और अधरों पर मंद-मंद मुस्कान शोभित हो रहा था। अपने शुभ सुडौल अंगों को कुछ ढँकते और कुछ दर्शाते हुए वे नाच रही थीं और मन को ललचा रही थीं, उन फूलों की तरह जिनकी कलियाँ मुँह खोलकर अपना स्वरूप दिखाती हैं और कुछ रूप छिपाकर बंद हो जाती हैं। इन स्त्रियों के रंग-रूप की ऐसी छटा पहले कभी भी नहीं दिखाई पड़ी। वन में वृक्ष के बगल से एक के बाद एक तरुणियों का दल निकल आया और इन नव नवेलियों की उपस्थिति से वह निशा निखर उठी। इनमें एक से एक बढ़कर रसवन्ती बार-बार सिद्धार्थ से कहती रही, "प्रिय ! तुम्हें खोजते-खोजते तो मानो मैं मर गई। इन अधरों का रस पान करो और एक पल, एक क्षण भी तो इस जीवन का आनन्द ले लो।"

पर सिद्धार्थ अपने आसन से जरा भी नहीं डिगे और न उनका ध्यान भंग हो सका। तब घमंड में उठकर कामदेव ने स्वयं धनुष उठा

लिया। उसी समय दूसरा चित्त चुराने वाला कामिनी दल आ पहुँचा। उसमें जो सबसे सुन्दर और लावण्यमयी थी वह सिद्धार्थ की ओर बढ़ आई। उसने यशोधरा का अति सुन्दर रुचिर रूप धारण किया और नेत्रों में जल ला, पूरे शरीर में विरह भाव जगा, अपनी दोनों बाहों को सिद्धार्थ की ओर पसारकर ऊँची साँस भरते हुए मंद-मंद स्वर में बोली, "मेरे कुँवर! हाय ! तुम्हारे बिना मैं मर रही हूँ ! मैं उस स्वर्ग के सुख को कहाँ पाऊँ यह सोचकर निरूपाय हूँ। रोहिणी नदी के तीर पर अपने नगर में हमने जो एक साथ रस पान किया, उसी जगह मैं अधीर होकर पहाड़ के समान दिन काट रही हूँ। अपने भवन वापस चल चलो। हे प्रिय ! एक बार फिर मुझे अपनी बाहों में ले लो और अधरों से लिपट जाओ। झूठे स्वप्नों में सभी कुछ भूलकर तुम सभी कुछ खो रहे हो। मैं वही हूँ जिसे तुम लगातार खोज रहे हो।" तब सिद्धार्थ ने प्रत्युत्तर दिया, "हे असत् छाया! अब और आगे मत बढ़ ! इस स्थान पर तेरा सारा प्रयत्न और उपाय व्यर्थ है। कामनी ! तू जिस प्रिय का रूप धर कर ज्ञान हरने आई है उसका सम्मान कर मैं तुझे शाप नहीं दे रहा। तू जो दृश्य जगत् को इतना सुन्दर बता रही है, जा भाग जा और उसी शून्य में जाकर विलीन हो जा जहाँ से तू आई है।" सिद्धार्थ के ये वचन सुनते ही वह छाया रूप एक ही क्षण में आकाश में धुँआ सा उड़ गया और वन में कोई नहीं रहा।

इसके बाद मार ने भयानक घना अंधड़ उठाया और इससे आकाश में अंधेरा छा गया। उसके बाद और भी अन्य पापों को जन्म देने वाले सिद्धार्थ के सम्मुख आए। उनके साथ ही 'प्रतिघा' अपनी कमर में काले नाग लपेटे हुए आई। जब भी वह कुछ बोलती या शाप देती तो उसके साथ वे भी फुंफकारते। तथागत ने उसके ऊपर अपनी सौम्य दृष्टि फेरी और इसके साथ ही उसकी बोलती बंद हो गई मानो उसकी काली जीभ पर कील ठोक दी गई हो। अब वह हिल-डुल नहीं सकती थी। वह बुद्ध का कुछ भी नहीं कर सकी और सभी विधि से हार गई। काले नाग

भी अपने भारी फन नीचे किये सिमटे रहे। वह सिद्धार्थ का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी। तत्पश्चात् 'रूप-राग' आए जो हर इंसान को अपने वश में किए रहते हैं। ये वे शक्तियाँ हैं जो इंसान को लुभा-लुभाकर, प्रलोभन दे देकर उसे इंसान से हैवान बना देते हैं। उनके पीछे-पीछे लगा हुआ 'अरूपराग' भी वहाँ आ पहुँचा। वह मनुष्यों के अन्दर तृष्णा जगाकर उसके मन को यश लिप्सा से पूरी तरह भर देता है। उसके जाल में बुद्धिमान भी फंस जाते हैं और फंसने पर निकलने हेतु उन्हें बहुत साहस और श्रम करना पड़ता है। भयंकर युद्ध होता है, मानो रणभूमि ही काँप उठती है। 'अरूपराग' को असफल होता हुआ देख उद्दण्ड 'अभिमान' सीना तानकर आगे बढ़ आया। अभिमान हो जाने पर संत जन भी अपने को 'सवाया' ही गिनते हैं। अभिमान के असफल हो जाने के बाद 'अविद्या' की बारी आई। वह अपना वीभत्स दल संग लेकर आगे बढ़ आई। उसके आते ही धरती कुत्सित और कुरूप वस्तुओं से भर गई। वह एक परम घिनौनी बुढ़िया के समान जब आगे बढ़ी तब चारों ओर धरती पर घनघोर अंधेरा छा गया। पृथ्वी काँप उठी, तूफान उठ खड़ा हुआ, रात्रि काँप उठी, मूसलाधार वर्षा होने लगी और बिजली चमकने लगी। भीषण उल्कापात से सारी धरती प्रचंड रूप से काँप उठी जैसे उसके खुले घाव पर मानो किसी ने आग बिखेर डाली हो। उस भयानक अंधकार में पंखों की फड़फड़ाहट का चीत्कार सुनाई पड़ा और यह दृश्य बहुत ही भयंकर था। प्रेतलोक से एक के बाद एक प्रेतों की सेना आ पहुँची और वे सिद्धार्थ को च्युत करने के उद्देश्य से वहीं पर सेंध लगाकर बैठ गए। किन्तु इन सारी आसुरी शक्तियों के सतत् प्रयत्न के बाद भी तथागत तनिक भी नहीं डिगे और अपने आसन पर विराजमान रहे। उन्हें चारों ओर से धर्म ने रक्षित कर रखा था जैसे चारों ओर खाई और चहारदीवारी होने से कोई निडर होकर अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। वह बोधिवृक्ष उस अंधड़ में भी अचल रहा। उसका एक भी पत्ता नहीं हिला और न उसका एक ओस कण भी ढुलका। बाहर सभी प्रकार के उत्पात और भयंकर

विघ्न घटित हो रहे थे पर उस वृक्ष की छाया में सौम्य, मनोहर शांति छाई रही।

अभिसंबोधन

जब रात्रि का प्रथम प्रहर बीत गया तब मार की सेना भाग गई और मृदु शीतल हवा बहने लगी। चारों ओर शांति ही शांति छा गई। सिद्धार्थ ने इस काल में सर्वप्रथम "सम्यक दृष्टि" पाई जिससे उन्हें सकल चराचर जगत् की गति दृष्टिगत हो गई। दूसरे प्रहर में शाक्यमुनि ने "पूर्वानुस्मृति-ज्ञान" प्राप्त किया जिससे उन्हें अपने प्रत्येक पूर्वजन्म की सुधि हो आई। हजारों जन्मों में जब-जब जहाँ-जहाँ, जिस-जिस भी योनि में साईं जन्मे वह सब उनके सामने बिल्कुल ही स्पष्ट हो गया। जैसे कोई बहुत दूर चलकर और ऊँची चढ़ाई चढ़कर पर्वत के उच्च शिखर पर जा पहुँचता है और वहाँ से पीछे मुड़कर दृष्टि पसार कर देखता है तो समस्त धरती दृष्टिगत होती है उसी प्रकार उन्होंने अपने सभी पूर्व जन्मों को देख लिया। उन्होंने देखा कि उनके पथ में कैसे-कैसे स्थल पड़े थे - ऊँचे, नीचे, खोह, नाले, दलदल आदि। पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि वीहड़ घने जंगल धरती पर इस प्रकार सिमटे दिख रहे थे जैसे धरती के आँचल पर एक हरे फूल का ठप्पा लगा हो। उन्होंने उन गहरी-गहरी खाइयों को देखा जिनसे बाहर निकलने में पसीना छूट गया था और दुगना परिश्रम करना पड़ा था। ऊँचे कठिन किनारे से होकर चलते हुए कंपकपी छूट गई थी और कहाँ-कहाँ पैर फिसल गए थे मानो प्राण ही निकल गए। हरी-हरी दूब से ढँकी हुई मनोहर पृथ्वी देखी और निर्मल झरनों का बहना और अति सुन्दर सरोवर देखा। चलते-चलते किस प्रकार पहाड़ की चोटी के पास एक धुँधली समतल जमीन दिखी जहाँ लगता था कि नीला आकाश अपने हाथ फैलाकर पहाड़ी के स्वागत के लिए आ पहुँचा था। बहुत सारे जन्मों में ऊपर जाने वाली दीर्घ-श्रृंखला देखी जो सीढ़ी के समान क्रमशः ऊपर ले जाती हुई दिखी। उन्होंने यह भी देखा कि अधम वृति से वे कैसे

अधोभूमि में जा गिरे थे और फिर निरंतर प्रयत्न कर उच्च भूमि पर आ पहुँचे थे जो निर्मल, पावन और सुन्दर थी जहाँ उन्हें 'दस शील' दिखे जो जीव की जीत में सहायक होते हैं, जिनसे अति ऊँचे निर्वाण-पथ पर पहुँचा जाता है।

बुद्ध ने देखा कि जीव कैसे शरीर धारण करता है, पूर्व जन्म में जो कुछ बोता है, वही अगले जन्म में काटने आता है। एक जीवन का अंत होता है और उसके साथ ही दूसरा जन्म शुरू हो जाता है। जो खो गया उसको छोड़ कर मूल से लाभ जा जुड़ता है। उन्होंने देखा कि किस प्रकार जन्म पर जन्म बीतते जाते हैं और पुण्य से पुण्य तथा पाप से पाप बढ़ जाते हैं। बीच-बीच में अर्थात् मरणकाल के अंतर में ही सदैव तुरंत ही सभी का लेखा लिख दिया जाता है। इस अचूक हिसाब-किताब में एक बिंदु तक की गलती नहीं होती और इस प्रकार जीवन में संस्कार का ठप्पा लग जाता है। इस विधि जब-जब प्राणी नया जन्म पाता है, अपने संग पूर्व जन्म का कर्म बोध लेकर आता है।

रात्रि के तृतीय प्रहर में बुद्ध को 'अभिज्ञा' प्राप्त हुई। इससे शाक्य मुनि ने 'आश्रय ज्ञान' प्राप्त कर लिया। उनकी दृष्टि लोक-लोक में पहुँच गई। उन्होंने प्रत्यक्ष दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि को देखा। हर चीज और हर बात का हर पहलू साफ-साफ स्पष्ट हो गया। भुवन के बाद भुवन, सूर्य के बाद करोड़ों सूर्य दिखे। साथ ही करोड़ों ग्रहगण अपनी चाल में बँधे, अपनी कक्षा में घूमते हुए दिखे जैसे नीले सागर में हीरों के द्वीप दिखते हों जिसका कोई ओर छोर न हो और न जिसकी कोई थाह हो। वे कभी घटते-बढ़ते नहीं हैं और निरंतर कार्यरत रहते हैं। उनमें रह-रह कर क्षण-क्षण रूप तरंग उठती रहती है। शाक्य मुनि ने अनंत पिंडों का अवलोकन किया। अलख सूत्र से बाँध कर ये अनगिनत लोकों को नचाते रहते हैं। पिंड स्वयं ही स्वयं की एक के बाद दूसरी बढ़कर परिक्रमा करता है और फिर-फिरकर स्वयं से ही महाज्योति निकालता है। बुद्ध ने ज्योति

की जगी हुई यह परंपरा जाना। इसकी उन्होंने अनुभूति की कि यह अमित, अखंड और अनंत है जो केन्द्र से जुड़ा हुआ है। वही फेरे पर फेरे डालता है। इस प्रकार चक्र पर चक्र बहुविधि बढ़ते जाते हैं। दिव्य दृष्टि से बुद्ध ने लोकों को यथावत देखा जो अपने-अपने पूर्व निर्धारित कालचक्र में घूमते रहते हैं। महाकल्प या कल्प की अवधि तक ये सभी भोग भोगते हैं और अंत में सभी ज्योतिहीन हो, समाप्त होकर मिट जाते हैं। तथागत ने ऊपर-नीचे तथा चारों दिशाओं में अपनी दृष्टि फेरी। अनंत नीलराशि को देखने से लगा मानो मति ही फिर जायेगी। इन सभी के पीछे, सभी रूपों से परे, लोक-लोकों से भी न्यारा, इस संपूर्ण जगत् की प्राणशक्ति से दूर किनारे उन्होंने एक शाश्वत नियम का अस्तित्व देखा। एक शक्ति जो अलख भाव से नित्य सनातन रूप से आदेश देती रहती है और जो तम को प्रकाश और जड़ को चेतन में बदलती रहती है। वह शून्य को पूर्ण और घटित को अघटित करती है। यह सुन्दर वस्तुओं को और सुन्दर बनाती है जो जग को मोह लेती है। इस अटल आदेश में कहीं भी शब्द अक्षर नहीं है और न इस विधि विधान और नियम-कानून का कोई ज्ञाता दाता है। सभी देवताओं से परे यही नित्य विधान दिखता है जो सभी प्रकार से अटल और अकथ्य और सभी से प्रबल और महान है। यही शक्ति जग रचती है, नाशती है और फिर बारंबार रचना करती है। साथ ही यह शक्ति विविध विधान का अपनी धर्मविधि के अनुसार रचना करती है। इसकी गति में तीनों गुण : सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण समाविष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस दिव्य शक्ति और गति के अनुकूल चलता है वह अपना सर्वस्व भला करता है। दूसरी ओर जो इस शक्ति के अनुकूल न चल इसके प्रतिकूल दिशा में चलने का प्रयत्न करते हैं वे भारी भूल करते हैं। इस प्रकार कीट-पतंगे भी अगर अपना जाति-धर्म निभाते हैं तो निश्चय ही वे उचित करते हैं। इसी प्रकार अगर अपनी भूख मिटाने के लिए बाज लवा को मारता है तो इसमें कोई दोष नहीं है। वह अपना भला ही करता है। वे सभी परस्पर मिल कर विशाल एवं महान विश्वविधान में योग देते

हैं, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। ओस के कण और तारों के समूह भी चमककर अपना पूरा-पूरा सहयोग देते हैं। जो मनुष्य जानता है कि जीवन के बाद मृत्यु ही आयेगी और जो किसी अच्छे कार्य हेतु शरीर त्यागता है, वैसा व्यक्ति धर्म पथ पर चल कर उत्तम जन्म ग्रहण करता है जहाँ वह धर्म-ध्वजा लहराता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन कलुषित नही होता वरण् पूर्णतः उज्जवल होता है। ऐसे व्यक्ति के सभी संकल्प दृढ़ हो जाते हैं और छोटे-बड़े सभी, जहाँ तक संभव होता है भव-भोग का उपभोग करते जाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि अन्य पथिकों का मार्ग सुगम, सहायक बनाने में मदद करे और उनकी प्रगति में बाधक न हो। इस प्रकार वह व्यक्ति लोक और परलोक दोनों में ही यश प्राप्त कर ले।

रात्रि के चौथे प्रहर में बुद्ध ने महान 'दुख सत्य' का अवलोकन किया जो पाप से मिलकर घोर और कटु विश्वविधान का सृजन करता है जैसे बार-बार हवा का झोंका खाने से आग दहक जाती है। "आर्य सत्यों" में यह जो "दुख सत्य" है, वही सबसे प्रधान है। तथागत ने अपने ध्यान में उस दुख-सत्य का निदान भी देखा।

जीवन के संग दुख उसी प्रकार साथ लगा रहता है जिस प्रकार मनुष्य की छाया उसके साथ लगी रहती है। जहाँ कहीं भी जीवन दिखता है वहीं पर यह दुख भी किसी न किसी ढंग से उसके पीछे लगा रहता है। उस दुख से तब तक मुक्ति नहीं मिलती जब तक इस जीवन से ही मुक्ति नहीं मिल जाती। यह दुख विभिन्न समय में विभिन्न रूप से दृष्टिगत होता है और क्षण-क्षण रूप बदलता रहता है।

जब तक संसार से लगाव और कर्म विकास छूटते नहीं, जब तक वृद्धि, विनाश, सुख, दुख या राग-अराग, द्वेष एवं सभी सुख समन्वित शोक और दुखमय आनंद छूटते नहीं हैं, जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं उगता तब तक ये फंदे नहीं छूटते हैं। किन्तु जो जानते हैं कि 'यह सारा का सारा जाल और खेल अविद्या का है' वे जीवन का मोह त्यागकर मोक्ष

प्राप्त कर लेते हैं। जिनकी दृष्टि व्यापक होती है वे स्वयं आप ही सब कुछ देख लेते हैं। इसी 'अविद्या' से सारी वृत्तियाँ 'संस्कार' जनमती हैं। इन संस्कारों (वृत्तियों) से अनेक 'विज्ञान' उत्पन्न होते हैं जिनसे अनेक प्रकार के नाम रूप का सृजन होता है और फिर 'नाम रूप' से 'षडायतन (मन+पाँच इन्द्रियों का समूह)' उपजता है जिसको लेकर जीव विवश हो दर्पण समान दृश्यों को ग्रहण कर लेता है। 'षडायतन' से फिर 'वेदना' का उद्‌भव होता है जो झूठे सुख और विविध प्रकार के दुख दिखाती है। यही वेदना उस 'तृष्णा' की पुरानी जननी है जिसके चलते यह प्राणी भवसागर में धँसता जाता है। इस भवसागर के तरंग में खारापन ही खारापन है जो सुख, संपत्ति, मान, कीर्ति, बहुत प्रकार की इच्छाएं एवं बड़ाई, प्रीति, विजय, अधिकार, अच्छे वस्त्र, अच्छे भोजन, कुल-गौरव, अभिमान, ऊँचे भवन प्राप्त करने की चाह तथा चंचल मन को जन्म देता है। दीर्घ आयु की कामना और हृदय में जीवन जीने की चाह, पाप पर आधारित लगातार जीवन संग्राम, जो कोई कटु होता है तो कोई रूचिकर, इन सभी से सम्मोहित होकर प्राणी घूँट-घूँट प्यास बुझाकर अपनी तृष्णा शांत करना चाहता है पर वह घूँट पीने की चाह, तृष्णा को बढ़ाकर और दुगुनी कर देती है। ज्ञानी पुरुष तृष्णा को मन से दूर रखते हैं और वे इन्द्रियों के झूठे दृश्यों से अपने आप को तृप्त नहीं करते हैं। वे अपने मन को दृढ़ रखते हैं और अविचल हो किसी ओर नहीं डोलते हैं और यत्न कर न तो जंजाल बढ़ाते हैं और न ही किसी को दुख पहुँचाते हैं। पूर्व प्रारब्ध कर्म के अनुसार जो कुछ भी उनके तन पर आ पड़ता है, वे सभी कुछ अविचलित चित्त रखकर यहाँ निरंतर सह लेते हैं। काम, क्रोध, रागादि सभी का दमन कर देते हैं और दिन-दिन प्रयत्न करके उन्हें कमजोर करके मार डालते हैं। इस प्रकार अंत में पूर्व जन्मों में जीवात्मा द्वारा संचित कर्मफल, मन में जो कुछ सोचा था और जिसे तन से संपादित किया था, अहंकार का जो जटिल जाल बहुत ही यत्न करके बुना था, इन सभी से सृजित काल-कर्म के अगोचर ताना बाना से मुक्त अब वह कलंकहीन होकर निरंतर शुद्ध और पवित्र होता जाता है। उसे फिर देह

धारण नहीं करना पड़ता है। वह पूर्णत: कर्मों से ऊपर उठकर निर्मल हो जाता है। अगर नया जन्म पाकर वह देह धारण करता है तो वह प्रसन्नचित्त होकर धैर्यपूर्वक अपना भवभार सहन करता है और इसे वह किसी को जताता नहीं है। इस प्रकार वह उर्ध्वगामी आरोह-पंथ पर ऊपर-ऊपर चलता जाता है और माया के 'स्कंधों' और माया के जाल से छूटता जाता है। उपादान के बंधन और भवचक्र हटाकर, पूर्णप्रज्ञ होकर, दु:स्वप्न समान जगत् को भुलाकर वह अंतत: राजाओं और देवों से भी बढ़कर उच्च पद प्राप्त कर लेता है। उसके जीवन में हाय-हाय और जीवन की चाह मिट जाती है। अब वह मुक्त शुभ जीवन प्राप्त कर लेता है जिसके सामने यह सांसारिक जीवन कुछ भी नहीं है। वह चरम आनंद, शांति और शून्यतम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही निर्विकार, अविचल विश्राम का पड़ाव है। यही परम गति है जिसका और कोई परिणाम नहीं है।

यहाँ बुद्ध ने संबोधि पाई, वहाँ दूसरी ओर पौ फटने को आया। पूर्व दिशा में अति सुन्दर, अद्वितीय दिवस की ज्योति जग गई। रात्रि का काला पट धीरे-धीरे ढलने लगा मानो वह बुद्ध की इस विजय की मृदु घोषणा कर रहा हो। अब धुंधले आकाश में सूर्य के प्रकाश की नूतन रेखा खिंचने लगी और ज्यों-ज्यों नभ-नीलिमा ऊपर की ओर बढ़ी त्यों-त्यों आकाश में विद्यमान शुक्र ग्रह अपना तेज खोता गया। वह पहले पीला पड़ा, फिर फीका पड़ा और अंतत: अब लुप्त होने जा रहा है।

सूर्य देवता के शुभ दर्शन पाकर कमल के फूल खिलकर शोभित होने लगे। सुबह-सुबह संचारित होने वाली हवा का परम सुख पाकर फूल भी पलकें खोल जग उठे और खिलने लगे। ओस की बूँदों से युक्त दूब पर भी एक ही क्षण में चारों ओर रोशनी फैल गई जैसे बीती रात्रि ने अपनी अश्रु-बूँद रूपी मोती बिखेर दी हो। आलोक के प्रभाव से सारी भूमि अब आलोकित हो रही है जैसे आकाश में बादलों के ऊपर सुनहला चमचम चढ़ाया जा रहा हो।

ताड़ के ऊँचे-ऊँचे सुनहरे वृक्ष हर्षित होकर अपने डंठल को हिला-हिलाकर प्रणाम कर रहे हैं। पर्वतों के बीच सूर्य की लावण्यमयी सुन्दर किरणें बिखर गई हैं। सूर्य की यह जग ज्योति अब सभी जीव-जंतुओं को जगा रही है। उसकी रश्मियाँ सघन वन की झाड़ियों के रुचिर रम्य स्थलियों में घुस आयीं हैं और कह रही हैं, "अब दिन उग आया।" हिरणियों के नेत्र चकाचौंध हैं। जो पक्षी अभी भी नीड़ में अपने पंखों के बीच सिर गड़ा नींद में पड़े हुए हैं उनके पास जाकर ये हिरणियाँ कह रही हैं, "अरे ! प्रभात के गीत गाओ।" अब जहाँ कहीं भी जाओ वहीं पर पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ रहा है। कोयल की मृदु कूक और पपीहों की बँधी बँधाई रट "पी कहाँ" सुनाई पड़ रहा है। तीतर कह रहे हैं, "उठो! देखो !" और चपल चूहियाँ कहीं पर 'चुह-चुह' कह रही हैं। तोतों का 'टें-टें' तथा लाल-लाल रंगों वाली चिड़ियाँ और अन्य पक्षी भी सुरीली धुन में गा रहे हैं। अन्य पक्षी किलकारी मार कर बोल रहे हैं और काक अपने कठोर कंठ से काँव-काँव बोले जा रहे हैं। कहीं मेढक करारी 'टर-टर' तो कहीं मोर आवाज निकाल रहे हैं। सभी परेवा पुलकित हैं और रस भरी परम प्रिय प्रेमगाथा गा रहे हैं। उनका गान पूर्णतः निर्बाध चल रहा है जैसे जीवन की घड़ी कभी नहीं चूकती।

बुद्ध के परम-विजय का ऐसा पुनीत प्रभाव पड़ा कि घर-घर में शांति छा गई और किसी भी प्रकार का कोई झगड़ा नहीं रहा। सभी झगड़े शांत हो गए। हत्यारे ने हत्या की जा रही वस्तु को तुरंत छोड़ दिया और झट ही छूरी दूर फेंक दी। चोर ने चुराया हुआ धन वापस रख दिया और बनिया ने उधार लिए पैसे पर ब्याज लेना छोड़ दिया, क्रूर लोग कोमल हो गए और कोमल हृदय वाले और भी कोमल हो गए। उस नए दिव्य प्रभाव को लेकर सर्वत्र अमृतमय जीवन का संचार होता हुआ दिखा। तुरंत नृपों ने आपस में हो रहे युद्ध को रोक दिया जो क्रोध और घृणा से परिपूर्ण आपस में युद्ध कर रहे थे। जो रोगी बहुत दिनों से खाट पर पड़े हुए थे वे भी हँसते हुए अपने खाटों से उठ खड़े हुए। जो मनुष्य मृत्यु के

निकट थे वे भी सहसा प्रमोद से भर गए। लगता था कि पूरे राज्य में चारों ओर अनेक सूर्य उदित हो गए हैं।

अपने घर की सेज पर जहाँ बेचारी दीन-हीन यशोधरा बैठी रहती थी वहाँ भी और उसके हृदय में भी सहसा हर्ष की धारा बह चली। उसके मन में अपने आप ऐसा विचार उठ आया, "प्रेम अगर सच्चा होता है तो वह कभी निष्फल नहीं जाएगा। अगर किसी पर घोर दुख आ पड़ता है तो ऐसे घनघोर दुख का अंत सुख के अतिरिक्त हो ही नहीं सकता और ऐसा जो कुछ भी होगा वह ईश्वर की कृपा के बिना हो ही नहीं सकता।"

चारों ओर अपार आनंद छा गया यद्यपि कोई नहीं जान सका कि वस्तुत: हुआ क्या है, मानो सुनसान बंजर के बीच में संगीत का सुर भर गया। तथागत का आगमन और उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति देखकर भूत-प्रेत-पिशाच को भी अपनी मुक्ति की आशा बँध गई। अत: वे भी पवन के संग हर्षित होकर नाचने-गाने लगे।

उसी समय आकाश में यह देववाणी हुई, 'जग का कार्य पूरा हो गया।' लोगों के बीच गलियों में अति चकित हो कई पंडित खड़े हो स्वर्ण ज्योति के प्रवाह की अनुभूति कर रहे थे और यूँ कहते जा रहे थे - "अवश्य ही कोई अलौकिक बात हुई है।" वन और गाँवों- सभी जगह सभी जीव वैर त्यागकर विचरते दिख रहे थे। जहाँ पर बाघिन अपने बच्चों को दूध पिलाती है वहीं पर सुन्दर-सुन्दर मृग खड़े हैं। भेड़िया और भेड़ एक साथ एक ही जगह चर रहे हैं और गाय और सिंह दोनों ही मिलकर एक ही घाट पर पानी पी रहे हैं। अपना विष त्यागकर साँप अपने मणि के साथ अपना फन लहरा रहे हैं और उनके पास ही गरुड़, जो साँप को खा जाते हैं, अपनी चोंच से अपना पंख खुजलाते जाते हैं। लवा बाज के सामने से बिना भय के निकल जाता है क्योंकि बाज उसका शिकार नहीं करता है। जहाँ पर बगुला ध्यान में बैठे हैं वहीं पर मछलियाँ खेल रही हैं। कहीं डाल पर

बैठी हुई गिलहरी पूँछ हिलाती है और तितलियों पर जरा भी झपट्टा नहीं मारती। तितलियाँ इस फूल से उस फूल पर चपल गति से जाती हैं और पीले, नीले आदि रंगों के पंख फड़काती हुई ये चारों ओर उड़ रही हैं। राजकुमार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त कर सूर्य के समान दिव्य तेज धारण कर लिया है जिससे वे संसार के भवभार का अंत करेंगे। सकल संसार के जीवन हित हेतु अमर्त्य विजय विभूति प्राप्त कर ली है। उस बोधिवृक्ष के नीचे अभी भी शाक्य-मुनि ध्यान में बैठे हैं और उनके आत्म-प्रभाव से मनुज, पशु, पक्षी एवं सभी जीव अति प्रसन्न हैं।

बोधिवृक्ष के नीचे दिव्य तेज और अनंत शक्तियाँ पाकर और हर्षित होकर बुद्ध उठे और अति ऊँचे स्वर में यह गाथा बोले जो सब देश-काल में सदा के लिए अमर हो गया-

"अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।
गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।।"

अर्थ: अनेक जन्म लेकर संसार के बहुत सारे दुख भोगता चला आया। जो कारीगर मेरे जन्म का सृजन करता था उसे खोजता रहा और मैं उसे आज खोज पाया। हे गृहकार ! अब तुम फिर कभी मेरे भवन का निर्माण नहीं कर सकोगे क्योंकि सारे साज और यंत्र को तोड़ डाला है और सारी सामग्री भी ढाह दी है। अब मेरा चित्त संपूर्ण रूप से संस्कार रहित हो गया है। मेरी तृष्णा मर गई है और जन्म-जन्म के फेरे का अंत हो गया है।

सप्तम सर्ग
यशोधरा को सुसंवाद

राजकुमार सिद्धार्थ के वन गमन के अनेक वर्षों के पश्चात् भी राजा शुद्धोदन पुत्र वियोग में सिपहसालारों के बीच उदास मन से वैठे रहते थे और यशोधरा भी पति के वियोग में सभी ठाट-बाट त्याग कर शोक और दुःख में तड़पती दिन गिन रही थी। राजा को जब कभी कार्य के लिए इधर-उधर घूमने वाले, बेघर बनजारों से किसी घूमने वाले साधु, संन्यासी या वैरागी के विषय में पता चलता तो तुरत दूतों को भेजकर उसके विषय में जानकारी लेते थे। बनजारे तथा घुमक्कड़ वापस आकर साधु, संन्यासी और गृहस्थ त्यागी वैरागियों, यतियों, जीवन से निर्जन में बसे योगियों के विषय में बताते थे लेकिन कोई भी कपिलवस्तु के राजवंश के उजियाले राजकुमार सिद्धार्थ के विषय में प्रिय संदेश नहीं ला सका। अथक प्रयास से भी उनके विषय में कुछ भी पता नहीं चल सका। राजा की सारी आशाएं जिस पर टिकी थीं, जो उनके भविष्य का एक मात्र सहारा था, जो यशोधरा को प्राणों से भी अधिक प्रिय था, उसका श्रृंगार, उसका सर्वस्व था, वह आज न जाने कहाँ-कहाँ भूला-भटका घूम रहा है ? कहाँ जो युवराज था वह आज वैरागी है। यह सब क्या हो गया है, कैसे हो गया है, इसे कोई भी समझ नहीं पा रहा था।

वसंत ऋतु का आगमन हो गया है। आम के पेड़ों पर मंजरियाँ लगी हैं जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि आम के पेड़ खुशी से झूम रहे हैं। ऋतुराज वसंत के आगमन से सारी धरती सुशोभित हो रही है। पत्तों सहित फूल चिकने, हरे-भरे दिखाई दे रहे हैं जिससे सारी धरती सजी दीख रही है। वाटिका में कुँवरी यशोधरा उदास मन से बैठी है। नदी किनारे बैठकर उसकी सुन्दर गहरी धारा को बार-बार देखे जा रही है। वियोग में आँखों से आँसू निकल रहे हैं तथा पलकें आँसुओं से भारी हो गई हैं, उसके कोमल गाल पिचक गए हैं। उसके कमल जैसे सुंदर होठों

पर विरह की पीड़ा दिख रही है। उसके चिकने मुलायम बालों की सुन्दर चमक फीकी पड़ गई है। उसके बालों के बीच चोटी गुँथी हुई है, पर वह बिल्कुल दिखाई नहीं देती। उसका शरीर पीला पड़ गया है। वियोग में वह बिना गहनों के रहती है। उसके पीले शरीर पर सफेद साड़ी है जिस पर कहीं भी सोने का कोई कण दिखाई नहीं दे रहा है। जो कभी प्रिय का साथ पाकर हंसों को भी अपनी गति से पराजित कर देती थी, आज पति वियोग में ऐसी हो गई है कि कदम रखने में भी काँप रही है। पहले स्नेहिल दीपक के समान जिन आँखों के काजल से सुन्दर स्नेह की चमक-दमक निकलती थी, वे ही आँखें अब रात्रि की शांति में जागती रहती हैं।

आज वह ज्योतिहीन, लक्ष्यहीन हो वियोग में इधर-उधर घूमती है। सुन्दर ऋतुराज की नयनाभिराम आभा को भी नहीं देख पा रही है। उसमें उसकी कोई रुचि ही नहीं है। उसकी पलक ढली पड़ी हैं, पूरी तरह खुली हुई भी नहीं हैं। उसकी अर्धखुली पुतली पर वियोग की काली छाया सी आ गई है। उसके एक हाथ में मोतियों से जड़ा हुआ वही कटिबंध है जिसे त्याग कर राजकुमार उस काली रात में चले गए थे। हाय ! उस भयंकर रात ने पता नहीं कितने दु:ख भरे दिन-रातों को जन्म दिया? इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रगाढ़ प्रेम कभी इतना निष्ठुर नहीं हुआ। लेकिन इससे एक बात हुई, जीवन में एक बात की गांठ बांध ली है कि इस प्रेम की मैत्री मेरे लिए नहीं थी। दूसरे हाथ ने अपने प्रिय स्नेहिल पुत्र राहुल का हाथ थाम रखा था। उसे कुमार अपनी धरोहर के रूप में छोड़ गए थे। उसका भी उन्होंने ख्याल नहीं किया। बढ़कर वह आज आठ वर्ष का हो गया है। उसका स्वभाद चंचल है और इसी स्वभाववश वह यहाँ-वहाँ घूमता रहता है, जिससे माता के मुख पर कभी-कभी प्रसन्नता छा जाती है। ऐसा लगता है जैसे बागीचे में पुष्पहास हो रहा हो। कमल के फूलों के पास किनारे पर माँ और बेटा कुछ समय से बैठे हैं। बच्चा मछलियों की ओर दाने फेंक रहा है तथा हँस रहा है। उसकी माता उड़ते हुए हंसों

की ओर देख रही है तथा नम आँखों से विनती करती हुई कहती है, "हे आकाश में विचरण करने वाले पंछियों ! मेरे प्रिय जहाँ कहीं भी छिपे हों, तुम वहाँ जाकर, कृपया उन्हें मेरा संदेश सुना देना कि यशोधरा उनके दर्शन के बिना तड़प रही है, भीषण दु:ख झेल रही है और ऐसी दीन-हीन यशोधरा अब मृत्यु की ओर जा रही है।"

गोपा शांत बैठी थी। इतने में ही उसकी अनुचरियाँ आकर उतावलेपन के साथ बोलीं, "देवी ! ऐसा संवाद अभी तक कभी नहीं सुना है। त्रपुष, भल्लिक नाम के दो सेठ माल लिए हुए नगर के दक्षिण द्वार पर आए हैं। ये देश-देश घूमते रहते हैं और सागर तट तक जाते हैं। ये नाना प्रकार की वस्तुएं जैसे स्वर्ण की अनमोल रत्नों से जटित कटार, चित्र- विचित्र पात्र, कस्तूरी, अगर, रोली एवं अन्य अमूल्य वस्तुएं लेकर आये हैं। लेकिन ये वस्तुएं जिसके सामने कुछ भी नहीं हैं वे वह भी लाए हैं। वे राजकुमार के संबंध में परम प्रिय संवाद लाये हैं। इन दोनों ने देखा है कि तुम्हारे प्राणेश्वर, हमारे देश के आधार, शाक्य कुमार चले आ रहे हैं। उन्होंने बताया है कि उन्होंने उनके साक्षात् दर्शन किए हैं तथा दंडवत प्रणाम कर, उन्हें भेंट चढ़ाई है, उनकी पूजा की है । विद्वद्जन उनके प्रति पूर्ण प्रकार समर्पित हैं और वे ज्ञानियों को भी परम दुर्लभ सारतत्व का ज्ञान देते हैं। वे जगदाराध्य अति शुद्ध, महान बुद्ध बन गए हैं। अब लोग उनको 'बुद्ध' के नाम से जानते हैं। मनुष्यों को परम दुर्लभ, शुभ ज्ञान देकर, वे उनका उद्धार करते हैं। उनकी मधुर वाणी से मुखरित दया एवं प्रेम भाव की कोई सीमा नहीं है। दोनों सेठों ने बताया है कि वे इसी तरफ चले आ रहे हैं।"

ऐसा शुभ समाचार सुनकर कुँवरी का हृदय उसी प्रकार उल्लसित हो गया जिस प्रकार गंगा हिमालय से उमंग के साथ उछलती, मचलती, इठलाती प्रथम बार पहाड़ों से उतर धरती से आ मिलती है। खुशी से अति उत्साहित, आँसुओं की बरसात लिए यशोधरा अचानक खड़ी हो गई और

बोली, "उन सेठों को तुरंत मेरे पास बुलाओ, इस शुभ समाचार को सुनने के लिए मेरे कर्ण तड़प रहे हैं। उन्हें तुरंत साथ लेकर आना और जाकर उनसे यह भी कहना कि अगर यह समाचार सच निकला तो मैं उन्हें थाल भरकर सोने और रत्न दूँगी तथा तुम भी उनके साथ अपना उपहार लेने आना। सभी को कुछ न कुछ उपहार अवश्य दूँगी।"

आज्ञा पाकर दोनों व्यापारी दासियों के साथ शीश नवाए राजकुमार के रंगभवन में प्रविष्ट हुए। वे सोने के सुंदर पथ पर धीमे-धीमे पैर रखते हुए चले। राज-वैभव देखकर उनकी आँखें हैरान थीं। वे सोने से चित्रित पर्दों के पास पहुँचे ही थे कि एक क्षीण, कंपित, मधुर स्वर उनके कानों में सुनाई दिया, "सेठ ! ये सभी दासियाँ कहती हैं कि दूर से आते हुए तुमने हमारे राजकुमार को कहीं देखा है, उनका प्रवचन सुना है, तुमने उनकी पूजा की है। जिन्होंने गृह त्याग दिया अब वे शुद्ध-बुद्ध के रूप में त्रिलोक में पूजे जा रहे हैं, सबका उद्धार करते हैं और वे इसी तरफ आ रहे हैं। तुम्हारी ये सब बातें अगर सच निकलीं तो तुम दोनों राजकुल के परम प्रिय मित्र होओगे।"

तब 'त्रपुष' नामक सेठ शीश नवा कर बोला, "हे देवी ! उन परम प्रिय बुद्ध को हमने अपनी आँखों से देखा है, हमने उनके पैरों पर शीश नवाया है तथा जिस राजकुँवर को हमने खो दिया था उन्हें राजाओं के भी राजा के रूप में पाया है। वे शुद्ध महान आत्मा बन गए हैं। बोधिवृक्ष के नीचे फल्गु तट पर उन्होंने आसन लगाया और वहीं उन्हें जग-उद्धारक सिद्धि का ज्ञान हुआ। वे सभी के सच्चे साथी, समस्त जीवों के प्रियवर बन गए हैं। पर उन सभी से भी अधिक हे देवि ! वे तुम्हारे ही हैं। तुम्हारे प्रिय का मूल्य तुम्हारे ये सच्चे आँसू ही बता रहे हैं। सभी प्राणियों को आज उनके वचनों से अनुपम सुख मिल रहा है। 'कुशल क्षेम से हैं' यह कहना तो विडम्बना है क्योंकि वे सभी तापों से परे हैं, उन्हें कोई दुःख छू भी नहीं सकता। इस संसार के समस्त भवजालों को भेद कर वे देवों से ऊपर हो

चुके हैं। सारे संसार में आज सत्य और धर्म की ज्योति प्रकाशित हो रही है, जगमगा रही है। वे नगर-नगर जा-जाकर जैसे-जैसे उपदेश सुनाते हैं, सभी जीव उनके उपदेशों का अनुसरण कर शांति, सुख पा रहे हैं। जैसे पतझड़ में पत्ते हवा के साथ उड़ते रहते हैं अर्थात् वे हवा का अनुसरण करते हैं उसी प्रकार नर-नारी उनका अनुसरण कर रहे हैं। 'गया' नामक स्थान के सुन्दर, रमणीय क्षीरिका नामक वन में हम दोनों ने उन्हें शीश नवाकर उनके उपदेशों को सुना है। चौमासे से पहले वे अवश्य ही यहाँ आयेंगे तथा अपने मधुर, उपदेशों से सबके शोक दुख टालेंगे।"

यह सब सुनकर यशोधरा हर्ष से गद्गद् हो उठी और बहुत देर में सँभल कर मात्र इतना भर बोली- "हे सज्जनों ! आप दोनों का हमेशा कल्याण हो जो आपने मुझे मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारा संदेश दिया है। अगर आप सब जानते हों तो मुझे विस्तार से बतायें कि यह सब आखिर हुआ कैसे ?" तब 'भल्लिक' नामक सेठ ने उस भीषण रात के विषय में बताया जब धरती तक काँप गई थी और चारों तरफ पानी ही पानी फैल गया था। इसके विषय में 'गय' पर्वत के सब नर-नारी पहले से ही जानते हैं। उसके बाद जब सूर्य उग आया तब भव्य सवेरा हुआ और जीवों के कल्याण के लिए आशा की नव-ज्योति का संचार हुआ। ज्ञान प्राप्ति के बाद राजकुमार के मुख पर अलौकिक आनंद व तेज जगमगा रहा था। बोधगया के बोधि वृक्ष के नीचे उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ। वे स्वयं संसार के बंधनों से मुक्त हो गए हैं तथा अब उन्हें 'बुद्ध' कहा जाता है। उनके अंदर यह विचार उदय हुआ कि दु:खी जगत् का कैसे भला हो और यही विचार उनके हृदय पर काफी दिनों तक भारी बोझ की भाँति पड़ा रहा। कुछ दिन तो वे वहीं पर चिंतन करते रहे कि संसार के नर-नारियों को इस विश्व के भव बंधनों से कैसे मुक्त कराया जाए ? कैसे उनको त्राण दिलाया जाए ? यही विचार उनके हृदय में आते रहे कि कैसे उनके दु:खों का निवारण किया जाए।

संसार के समस्त नर-नारी दिन-रात विषय-भोगों के पाप में लिप्त रहते हैं और सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त कर इस भ्रम में रहते हैं कि वे सुखी हैं। उनकी आँखों पर पर्दा पड़ा रहता है जिसे वे टालना नहीं चाहते और वे खुद को इंद्रियों के जाल में उलझाए रहते हैं। बुद्ध यही सोचते रहते हैं कि जगत के नर-नारियों का उद्धार कैसे होगा, वे जीवन ज्ञान कैसे ग्रहण करेंगे ? किस तरह जगत के नर-नारी जगत के दु:खों, भव-बंधनों से मुक्ति का द्वार 'अष्ट मार्ग' एवं 'द्वादश निदान' अपनाएंगें ? यही तो उद्धार-द्वार है पर एक विचित्र स्थिति है कि पिंजरे में पक्षी बंद है, पिंजरे का द्वार खुला है पर पक्षी पिंजरे से बाहर आना नहीं चाहता, बाहर आने के प्रति वह सचेत नहीं है। इसी प्रकार जगत् के नर-नारी भी अपनी मुक्ति के प्रति सचेत नहीं हैं। मुक्ति का मार्ग खोजना कठिन है लेकिन बुद्ध उस मार्ग पर अकेले ही चलते गए। ज्ञान प्राप्ति के बाद उनको लगा कि इस जग में तत्व ज्ञान का कोई अधिकारी नहीं है। अगर ऐसा जानकर वे जगत् के नर-नारी को त्याग देंगे और उनसे दूर रहेंगे तो उनको गति अर्थात् मुक्ति कैसे मिलेगी ? पर उनके कोमल हृदय में सब प्राणियों के प्रति सदैव समान दया भाव रहा है। वे सब जीवों का उद्धार चाहते हैं क्योंकि उनको सभी समान रूप से प्रिय हैं। उनके मन की इस अन्तर्दशा की स्थिति में एक भयंकर आर्तनाद भरी वाणी सुनाई दी और ऐसा प्रतीत हुआ मानो धरती कराहकर कह रही है, 'तीनों लोकों के साथ मैं भी नष्ट हो रही हूँ।' कुछ देर शांति रही और फिर हवा ने उनसे कुछ इस प्रकार प्रार्थना की, "हे दयामय ! प्रवचन सुनाइए, धर्म का प्रचार कीजिए ! समस्त जीव भव-ताप से जल रहे हैं। कृपया अब देर मत कीजिए, धर्म का प्रचार कीजिए।" इस करूणामयी पुकार को सुन तथागत ने तुरंत समस्त प्राणियों पर अपनी दिव्य दृष्टि डाली तथा समस्त जीवों को देखा कि कौन धर्म का दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी है तथा कौन इस योग्य नहीं है। उन्होंने जीवों को इस प्रकार निहारा जैसे प्रातः सूर्य सोने के समान स्वच्छ कमल से भरे तालाब पर अपनी किरणें डालता है और

देखता है कि कौन-कौन सी कलियाँ विकसित होने जा रही हैं और कौन नहीं। तब वे बोले- "जो भी जहाँ-जहाँ पर हैं वे सब सुनें ! मैं सभी को धर्म अवश्य सिखाऊँगा, जो भी चाहे वह सीख ले अर्थात् जो भी सीखना चाहे वह सीख सकता है।"

उस समय बुद्ध के ध्यान में पंचवर्गीय भिक्षु आए। वे तुरंत ही वाराणसी की ओर चल दिए। वहाँ सारनाथ में उन्होंने उन भिक्षुओं को ही अपना पहला उपदेश दिया। इस तरह उन्होंने 'धर्म-चक्र' का प्रवर्तन किया और दिव्य ज्ञान प्रदान किया। बुद्ध ने उन्हें मंगलमय 'मध्यम मार्ग', 'आर्य सत्य' ्वं 'अष्टांग मार्ग' के विषय में बताया। उन्होंने यह भी बताया कि प्राणी जन्म-मरण से कैसे छूट सकते हैं। यह सब बताकर बुद्ध बोले, "मनुष्य की गति उसके अपने हाथों में ही है। पूर्व कर्मों को छोड़ कर और कुछ भी भावी नहीं होता है। हे भ्राता ! उसके अतिरिक्त और कोई नरक नहीं है जिसका मनुष्य स्वयं अपने हाथों निर्माण करता है। साथ ही कोई ऐसा स्वर्ग नहीं है जहाँ वह नहीं जा सकता । मनुष्य अगर अपने मन की विषय-वासनाओं पर नियंत्रण रखे और उनका दमन करे तो मनुष्य कहीं भी, किसी भी स्वर्ग तक जा सकता है।"

पाँच भिक्षुओं में सबसे पहले "कौडिन्य" नामक भिक्षु 'चार सत्य', 'अष्टांग मार्ग' में ज्ञान पाकर दीक्षित हो गया। उसके बाद 'महानाम', फिर 'भद्रक', 'वासव' तथा 'अश्वजित' नामक भिक्षु धर्म मार्ग में दीक्षित हुए। वे सभी धर्म मार्ग में प्रविष्ट होकर शांत चित्त हो गए। उसके बाद काशी के प्रसिद्ध सेठ ने जिसका नाम 'यश' था, बुद्ध की शरण में आकर प्रव्रज्या ली । तदोपरांत चार अन्य मित्रों ने उस सेठ से दिव्य ज्ञान् के विषय में जानकारी प्राप्त कर बुद्ध की शरण ली और भिक्षु बन गए। इसके बाद पचास अन्य नगरवासियों ने उनसे दीक्षा पाई। उनकी वाणी लोगों के कानों में जहाँ-जहाँ पड़ी, वहाँ-वहाँ नये युग में शांति का संचार होने लगा। जैसे वर्षा-ऋतु में वर्षा की बूँदों को पाकर धरती पर नए-नए

अंकुर लहलहाने लगते हैं, उसी प्रकार उनके अद्‌भुत ज्ञान से सर्वत्र शांति और सद्‌भाव का संचार होने लगा।

तत्पश्चात् बुद्ध ने साठ भिक्षुओं को वैरागी और धीर चित्त वाला संयमी पाकर धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए भेजा। उन्होंने सारनाथ के इसीपत्तन 'मृगदाव' में जाकर अपना संघ बनाया और राजगृह के निकट 'यष्टिवन' नामक वन की ओर प्रस्थान कर गए। कुछ दिनों तक वहाँ रहकर धर्म के उपदेश सुनाते रहे। वहाँ राजा बिंबिसार, उनके पुरजन तथा सभी परिजन आए तथा बुद्ध की शरण में आकर अपना मोह समाप्त किया। उन्होंने निरोध, शील, संयम एवं धर्म के तत्वों को सीखा। तब राजा ने हाथ में कुश एवं जल लेकर संकल्प लिया और सुन्दर, सुहाना, रम्य 'वेणुवन' संघ को समर्पित कर दिया। उस वन में स्थित सुन्दर सरितायें, लताएँ एवं गुहाएं मन को अत्यधिक लुभाती हैं। राजा ने वहाँ शिला गड़वा कर निम्न वाक्य खुदवाए-

"ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणो।"

"हेतु से उत्पन्न जो धर्म और दुख समुदाय हैं, उन दुखों का कारण तथागत ने समझा दिया है । दु:खों के निरोध को ही महाश्रमण तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताकर उन्होंने डूबते जग को बाँह का सहारा देकर उसे बचा लिया है।"

उसी उपवन में एक महान संघ बैठा जहाँ पर शाक्य-मुनि ने ओजपूर्ण दिव्य ज्ञान दिया। ऐसे दिव्य, अपूर्व अव्यक्त एवं प्रभावशाली ज्ञान सुनकर नौ सौ लोगों ने दीक्षा ले ली और संघ के भिक्षु बन गए। वे जाकर धर्म प्रचार करने लगे। बुद्ध ने उन्हें यह शिक्षा-सार दे विदाई दी:

"सब्ब पापस्स अकरणं; कुसलस्स उप संपदा,
सचित्त परियो दवनं एवं बुद्धानुसासनं।"

"समस्त अकुशल कर्मों (पाप) का न करना, कुशल कर्मों (पुण्य) का संचय करना, अपने चित्त का निरोध करना यही बुद्ध अनुशासन है।"

इस तरह सेठों ने सारी कथा सुनाई और यशोधरा ने उन्हें साभार विदाई दी । कंचन और रत्नों से भरा थाल उन्हें उपहार स्वरूप दिया। जब वे जाने लगे तो यशोधरा ने उनसे फिर पूछा कि प्रियवर किस मार्ग से कितने दिनों में आयेंगे ? इस पर दोनों सेठों ने शीश नवाकर कहा, "हे देवी ! इस पुर के प्राचीर से राजगृह साठ योजन से कम की दूरी पर नहीं है। पहाड़ों को पार कर सुगम मार्ग आता है तथा सोन नदी के किनारे-किनारे कुछ कछार पड़ते हैं। गाड़ी के बैल प्रतिदिन आठ कोस चलते हैं। इस प्रकार हम वहाँ एक माह में पहुँचते हैं।"

कपिलवस्तु गमन

राजा को जब इस बात का पता चला तो अति प्रसन्न हुए और घुड़सवारी में कुशल नौ सामंतों को बुलाकर उनके द्वारा कुमार को अलग-अलग यह संदेश भेजा, "हे कुमार ! तुम्हारे बिना तड़पते हुए हमें सात वर्ष बीत गए हैं। रात-दिन तुम्हारी खोज में सभी दिशाओं में दूत भेजा और अब चिता पर चढ़ने के दिन निकट आ गये हैं। कभी भी मेरी मृत्यु हो सकती है। इसलिए मैं तुमसे बार-बार विनय करता हूँ कि जहाँ पर तुम्हारा सब कुछ है तुम वहीं वापस लौट आओ। हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजपाट अस्त-व्यस्त है। समस्त राज्य रोता-तड़पता है। तुम्हारे बिना प्रजा तरस रही है, वह तुम्हारे दर्शनों के लिए व्याकुल है। मैं तो थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ। अत: आकर दर्शन दो।" उन दूतों ने यशोधरा का भी संदेश लिया, "यशोधरा, राजकुल की रानी, राहुल की माँ तुम्हारा मुख देखने को परम व्याकुल हो कमजोर, क्षीणकाय हो गयी है। वह

तुम्हारी प्रतीक्षा उसी तरह कर रही है जिस तरह दीन-हीन कुमुदनी चंद्रमा की प्रतीक्षा करती रहती है। त्याग करने से यदि कोई पदार्थ मिला हो तो उसमें आज वह अपने और राहुल के भाग के विषय में याद दिला रही है।"

संदेश ले शाक्य सामंत मगध की ओर चल पड़े। जब वे वेणुवन पहुँचे तब बुद्ध धर्म उपदेश दे रहे थे। वे सभी वहाँ जाकर धर्म उपदेश सुनने लगे। धर्म उपदेश सुनते ही वे सारे संदेश भूल गए। उनके मन में न तो राजा का ध्यान रहा और न कुँवर की रानी की कोई सुधि रही। वे गतिहीन से हो गए एवं उनके मुख से कोई वचन नहीं निकल पाया। वे सभी बुद्ध की ओर एकटक देखते रहे और प्रवचन सुनते रहे। उनकी ज्ञानदायिनी, ओजस्वी एवं दयामयी वाणी सुनकर उन सब सामन्तों की बुद्धि स्थिर हो गई। उनकी स्थिति वैसी ही हो गई जैसे कोई भौंरा गृह खोजने बाहर निकलता है और किसी बेल पर खिले फूल देखकर, हवा में सुगंध पाकर, आँधी, पानी, अंधेरी रात सब कुछ भूल जाता है। वह उन फूलों पर बैठ जाता है तथा वहाँ सुख से मीठा-मीठा शहद पीता है। शाक्य सामंत भी बुद्ध के धर्म उपदेश का अमृत पान करने लगे तथा भिक्षु बन संघ में जा मिले, कुछ भी नहीं कह पाए।

कई महीने बीतने के बाद भी जब कोई शाक्य सामंत वापस नहीं आया तो राजा ने सचिव के पुत्र काल उदायी को कुँवर के पास भेजवाया। वह कुँवर का भरोसेमंद बालसखा था तथा राजा स्वयं उस पर बहुत भरोसा करते थे। लेकिन वह भी वहाँ जाकर सिर मुँड़वाकर भिक्षु बन गया तथा घर-बार त्याग कर संघ में रहने लगा। एक बार मनोहर एवं रमणीय ऋतु देखकर वह तथागत के पास आकर बोला- "हे दयामय ! मेरे मन में एक बात उठती है कि भिक्षुओं को एक जगह पर अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए, उन्हें घूम-घूम कर धर्म का प्रचार करना चाहिए। बड़ी कृपा होगी अगर आप एक बार कपिलवस्तु की ओर पधारें। वहाँ आपके

पिता नरेश एवं राहुल की माता आपके दर्शनों के लिए व्याकुल हैं।" चारों तरफ दृष्टि डालते हुए तथागत हँस कर बोले- "मित्र ! धर्म का प्रचार करने मैं कपिलवस्तु अवश्य ही जाऊँगा। यह मेरा कर्त्तव्य है और मेरी इच्छा भी। किसी को भी माता-पिता के प्रति आदर-सम्मान में कमी नहीं करनी चाहिए और जब भी अवसर मिले उनका सम्मान करना चाहिए, उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिए क्योंकि वे ही मनुष्य को इस धरती पर लाते हैं, उसे जीवन देते हैं जिससे अगर वह यत्न करे तो निर्वाण प्राप्त कर मुक्त हो सकता है। अगर मनुष्य धर्म के अनुपालन में अनवरत लगा रहे, सभी नूतन बुरे कर्मों को त्याग अपने पूर्व के बुरे कर्मों से सम्बन्ध तोड़ ले, अपने मन में दया भाव रखे तथा परहित के लिए ही अपने आप को समर्पित कर दे तो उसे निर्वाण रूपी परम आनंद की प्राप्ति होती है। आप महाराज को जाकर मेरा संदेश दे दें कि उनका आदेश शिरोधार्य करते हुए मैं कपिलवस्तु आ रहा हूँ।"

कपिलवस्तु में राजकुमार के आगमन की बात आग की तरह फैल गई तथा कुँवर की अगवानी के लिए सब नर-नारी बहुत उत्साह से विभिन्न आयोजन करने में जुट गए। कुँवर के आने के सुसमाचार से उन्हें इतनी खुशी मिली कि वे अपने सब काम-धंधे, नींद और यहाँ तक कि भोजन करना तक भूल गए। दक्षिण द्वार के पास अति विचित्र तम्बू तान दिया गया तथा वहाँ बड़े-बड़े दरवाजों पर नए-नए सुन्दर पुष्पों के हार लगाए गए। चारों ओर विभिन्न रंगों के परदे लगा दिए गए एवं उन पर सोने के तार जड़ दिए गए जहाँ शुभ, हरे-हरे बंदनवार सुशोभित हो रहे थे। मंगलदायक द्रव्यों से भर कर कलश रख दिए गये। पुर के सभी रास्ते सुसज्जित किए गए तथा उन पर चंदन जल का छिड़काव किया गया। ध्वजाओं की पंक्तियाँ एवं नूतन आम्र पल्लव वहाँ पर स्वागत में लहराने लगे। नगर पाल का निर्देश सबने सुन लिया कि पुरद्वार पर कितने हाथी रहेंगे। उन हाथियों को स्वर्णिम हौदों से तथा उनके दाँतों को इस तरह

से सजा दिया गया कि जैसे बिजली चमक रही हो। इसका निर्णय लिया गया कि नगाड़ों की धुन कहाँ बजेगी तथा कुमार को लेकर कहाँ जाया जाएगा और कहाँ पर उन पर फूल बरसाए जायेंगे। सभी रास्ते फूलों से इस तरह से भर दिये गए कि जहाँ भी कुमार का अश्व कदम रखे उसका पैर फूलों में ही धँस जाए, उसकी टाप उन्हीं फूलों में समा जाए तथा सभी लोग उनकी जय-जयकार करें। इस तरह राजा का आदेश जारी किया गया और सभी नगरवासियों के हृदय में कुँवर के दर्शन करने को लेकर अत्यधिक उत्साह उमड़ पड़ा। सभी दिन निकलते ही दिन गिनने लग जाते और कुँवर के आने की खुशी में नगाड़े की आवाज सुनने की प्रतीक्षा करते।

बुद्ध से सबसे पहले मिलने की अभिलाषा से यशोधरा पालकी में चढ़ कर पुर के द्वार पर चली गई ताकि सबसे पहले वह उनका दर्शन कर सके। उस द्वार के चारों ओर सुशोभित, रमणीय बरगद के पेड़ों का झुण्ड है जहाँ पर बहुत से पेड़, नई-नई प्रकार की बेलें नयनाभिराम दृश्य प्रस्तुत करते हैं। वहाँ का दृश्य लुभावना तथा मनभावन है। पगडंडी के दोनों ओर हरियाली ही हरियाली है तथा दोनों तरफ फूल और फल से झुकी डालियाँ हैं। वहाँ से राजमार्ग सीधे बागीचे की तरफ जाता है तथा उसके दूसरी तरफ अछूतों की बस्तियाँ हैं। ये दीन-हीन पुर के बाहर बसते हैं जिन्हें ब्राह्मण एवं उच्च जाति के लोग नहीं छूते हैं। लेकिन आज उनमें भी उत्साह की कमी नहीं दिखाई दे रही है। वे सूर्य की किरण निकलते ही इधर-उधर डोलने लगते हैं। तथागत के दर्शनों की चाह में उनमें भी उत्साह का संचार हो गया है जिन्हें समाज दीन-हीन समझता रहा है। जब भी घंटों की आवाज या बाजों की धुन उनके कानों में पड़ती है वे सोचते हैं कि बुद्ध आ रहे हैं और इस खुशी में वे मार्ग को देखने लग जाते हैं या पेड़ों पर चढ़कर सिर उठाकर दूर-दूर तक देखते हैं कि कहीं कोई आ तो नहीं रहा है लेकिन जब कोई भी उन्हें आता दिखाई नहीं देता तो

वे पुन: अपनी झोपड़ी को संवारने में लग जाते हैं। बुद्ध के दर्शनों की चाह में, उनके स्वागत में वे हर रोज घर को झाड़-बहारकर साफ करके, चौखट पोंछते, चबूतरा लीपते तथा चौक सुधारते हैं। अशोक वृक्ष की लहलहाती हुई कोमल डालियों से उन्होंने बंदनवार बनाया है और वहाँ से गुजरने वाले हर यात्री से वे पूछ लेते हैं कि कहीं राजकुमार की सवारी तो नहीं आ रही है। यशोधरा भी प्रिय से मिलने की चाह में वहाँ पर खड़ी उत्सुकतावश यात्रियों का उत्तर सुनती है।

तभी अचानक दूर से एक भिक्षु आता हुआ दिखा। वह शरीर पर गेरूआ वस्त्र डाले हुए है और दीन-हीनों के घर के सामने भिक्षा के लिए हाथ पसारता है। वहाँ पर कुछ मिलता है तो ले लेता है और नहीं तो वह अगले द्वार पर चला जाता है। उसके पीछे-पीछे गेरुआ वस्त्र पहने और कमंडल लिए दो भिक्षु चल रहे हैं। लेकिन जो आगे चल रहे हैं उनकी मुद्रा गंभीर है। उनको चारों तरफ से एक आभामंडल ने घेर रखा है। उनका चितवन कोमल तथा पवित्र है। जो भी उन्हें भिक्षा देने आता है वह मंत्रमुग्ध हो उन्हें देखता ही रह जाता है। जब वे दीन-हीनों की बस्ती से गुजर रहे हैं तो कोई-कोई भागकर उनके पैरों में पड़ जाता है और अपने सामर्थ्य के अनुसार उनको कुछ अर्पित कर देता है। लेकिन साथ ही कुछ अपनी दीनता पर पछताते हैं कि वे उन्हें कोई विशेष वस्तु नहीं दे पाए। धीरे-धीरे औरतें, आदमी तथा बालक सब उनके साथ चलने लगते हैं तथा हैरान होकर आपस में कानाफूसी भी कर रहे हैं, "यह ऋषि कौन है, मन में कुछ याद आता है क्या ? ऐसा महान ऋषि पहले कभी दिखाई दिया क्या ? हमने तो कहीं भी नहीं देखा ?" चलते-चलते वे मंडप के पास आ गए। यशोधरा वहाँ पहले से ही आ गई थी और रास्ते में चंद्रमा के समान मुख को उघार कर खड़ी थी। जैसे ही बुद्ध को देखा वह पुकार उठी, "हे स्वामी ! हे आर्य पुत्र !" तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ रोती, सिसकती दोनों हाथ जोड़, अधीर हो वहीं उनके पैरों पर गिर पड़ी।

राम-लक्ष्मी की कथा

समय के अन्तराल से जब यह राजवधू यशोधरा धर्म में दीक्षित हो चुकी तब एक दिन एक शिष्य ने बुद्ध के सम्मुख यह शंका प्रकट कर दी, "आप तो सभी बंधनों से मुक्त हो चुके हैं, सभी प्रकार की वासना त्याग चुके हैं, फूल के समान कोमल यशोधरा को भी आपने छोड़ दिया है। फिर आपने यशोधरा को अपना आलिंगन क्यों करने दिया ?"

यह वचन सुन बुद्ध प्रसन्न मन से बोले, "महाप्रेम, लघु प्रेम को इसी तरह सहारा देता है तथा उसे प्यार करके पुचकार कर सहज ढंग से उच्च किनारा तक ले जाता है। यह ध्यान रखो कि अगर कोई भव बंधनों से मुक्त हो जाता है तो इस मुक्ति पर गर्व करके वह किसी जीव का दिल नहीं दुखाए और हमेशा याद रखना चाहिए कि यह मुक्ति किसी ने भी एक बार में ही प्राप्त नहीं की। यह ज्ञानबल तो जन्म-जन्म के प्रयत्नों से प्राप्त होता है। इस प्रकार अंत में जाकर मुक्ति का फल मिलता है। तीन कल्प तक लगातार, अनवरत प्रयास करके ही बोधिसत्व जगत के उद्धार के लिए मुक्त होते हैं। बोधिसत्व से परे विकास की तीन अवस्थाएं हैं। पहली अवस्था में 'मन प्रणिधान' बलवती होती है और मन में बुद्ध होने की लालसा जागृत होती है। दूसरी अवस्था में बुद्ध बनने के लिए 'वाक प्रणिधान' की मनः स्थिति बनती है और 'मैं बुद्ध होऊँगा' यह संकल्प किया जाता है। तीसरी अवस्था में बुद्ध की दृढ़ता आती है कि "मैं अवश्य ही बुद्ध होऊँगा*।" "पहली अवस्था में मैं शुभ मार्ग के विषय में केवल

---

*'मन प्रणिधान' के उपरांत सर्वभद्रकल्प में जब गौतम धन्यदेशीय सम्राट के पुत्र हुए तब उन्होंने कहा "मैं बुद्ध हूँगा"। सारमंद नामक तीसरे कल्प में वे पुष्पवती के राजा सुनंद के पुत्र हुए। इसी कल्प में उन्हें तृष्णांकर बुद्ध द्वारा 'अनियत विवरण' (अर्थात् तुम अवश्य बुद्ध हो सकते हो) और दीपंकर बुद्ध द्वारा 'नियत विवरण' (अर्थात् तुम अवश्य बुद्ध हो सकते होगे) प्राप्त हुआ। कहीं-कहीं बोधिसत्व की तीन अवस्थाओं के नाम 'अभिनीहार'-(बुद्धत्व की आकांक्षा), व्याकरण (किसी तथागत की भविष्यवाणी कि तुम बुद्ध होगे), और हलाहल (आनंदध्वनि) भी मिलते हैं।

सोचता ही रहता था और उस समय मेरी आँखों पर पर्दा पड़ा हुआ था।" फिर उन्होंने अपने पूर्व जन्म की कहानी कही: लाखों वर्ष पहले समुद्र तट पर मैं 'राम' नामक वैश्य के रूप में रहता था। उसके दक्षिण दिशा में स्वर्ण भूमि थी जहाँ से सोना निकलता था और वहाँ पर सीपों में से चमचमाते हुए अनमोल मोती निकलते थे। यशोधरा इसी प्रकार सुकुमार, उस जन्म में भी मेरी पत्नी थी और उसका नाम 'लक्ष्मी' था। हम बहुत दरिद्र थे और मुझे पूरी सुधि आती है कि जब-जब भी मैं धन कमाने के लिए परदेस जाने लगता तो लक्ष्मी आँखों में आँसू भरकर विनती करते हुए बोलती, "मुझे छोड़कर मत जाओ। तुम तो कहते हो कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ । फिर तुम मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हो ? गृहत्याग करके तुम धरती तथा समुद्र का जोखिम क्यों उठाने जा रहे हो ?" लेकिन मैं साहस जुटाकर सागर-पथ पर चला गया। रास्ते के सभी जोखिमों को उठाता, जल जंतुओं से अपनी जान बचाता और घोर धूप, काली तथा भयंकर रातों के साथ संघर्ष करता पथ के अवरोधों को झेल, अति-दुष्कर श्रम करता हुआ मैं चलता चला गया। वहाँ समुद्र में अति गहराई में मुझे एक अति निर्मल, चंद्रमा की तरह अनमोल चमक वाला मोती मिला। वह मोती इतना कीमती था कि एक राजा अपना पूरा का पूरा राजकोष खाली कर ही उसे खरीद सकता था। तब मैं खुशी-खुशी गाँव लौट आया। लेकिन उस समय पूरे देश में भीषण अकाल पड़ा था। मेरी भी हालत ठीक नहीं थी। रास्ते के संघर्ष एवं मेहनत से मेरा अंग-अंग टूट रहा था। मुझे अत्यधिक थकान हो गई थी । साथ ही मुझे भूख-प्यास भी सता रही थी।

किसी तरह से गिरता-पड़ता मैं अपने घर पहुँचा। उस अनमोल रत्न को मैंने कमरबंद में बांध रखा था। लेकिन जिसके लिए मैंने यह सब परिश्रम किया था उसे मैंने चौखट पर निश्चल, अचेत पड़ी पाया। लक्ष्मी ने बड़ी मुश्किल से आँखें खोली। उसके मुख से आवाज नहीं निकल रही

थी और अन्न के बिना उसके प्राण निकलने को थे। तब गाँव भर में घूमते हुए मैंने घोषणा की कि जिस किसी के भी घर कुछ भी अन्न हो, उस अन्न द्वारा एक जीव का हित करने हेतु एक पूरे राज्य के मूल्य के समान यह मोती देता हूँ। अगर किसी के पास जरा भी अन्न बचा हो तो वह मुझे लक्ष्मी के मुख ग्रास के लिए दे जाए और मुझसे यह चंद्रमा की तरह चमकता रत्न खुशी-खुशी ले जाए। यह सुनकर एक व्यक्ति तीन सेर बाजरा लेकर आया और वह रत्न मुझसे ले गया। उस अन्न से लक्ष्मी के प्राण तन में वापस आ गए और सांस लेकर वह बोली, "तुम्हारा प्रेम सत्य है और मुझे अब तुम्हारा त्याग दिख पड़ा है।" इस तरह वह अनमोल रत्न जो मुझे उस जन्म में मिला था, उसे मैंने तुरंत एक नेक काम करने में लगा दिया। रत्न देने के सिवाय अन्य किसी भी तरह से लक्ष्मी की प्राणरक्षा नहीं होते देख मैंने एक जीव की जीवन रक्षा हेतु क्षण भर में ही अपनी अनमोल सम्पदा का त्याग कर दिया। उस त्याग से बुद्ध बनने की मेरे मन में जो लालसा थी उसे और अधिक बल मिला तथा आज अंत में मुझे दुर्लभ मुक्ति का फल प्राप्त हुआ है। यह अनमोल सत्य धर्म है 'बारह उपचार' जो अनमोल रत्न हैं। यह कभी भी घटता नहीं है और दूसरों को देने पर और बढ़ता ही जाता है। मेरू पर्वत के सामने जैसे चींटियों द्वारा बनाया रेत का ढेर होता है और समुद्र के सामने गाय के खुर भर जितना जल होता है, इस जन्म का दान मेरे उस जन्म के दान की तुलना में वैसा ही है। मेरा इस जन्म का प्रेम उसी प्रकार महान है और यह इन्द्रियों के बंधन से मुक्त है तथा सभी विधि न्यारा है। ऐसे दान से जीवों का मंगल होता है और सभी भ्रम छूटते हैं। हमेशा कमजोर, निर्बल जीव का सहारा बनो। इसका सबसे ज्यादा महत्व है। इसमें कोई भी संदेह नहीं है। इस प्रकार यशोधरा पावन मृदुल प्रेम का सहारा पाकर शांति, सुख के मार्ग पर बढ़ गई तथा उसके सभी संदेहों का निवारण हो गया।

राजा ने जब सुना कि राजकुमार सिद्धार्थ कैसे राजद्वार पर आए

हैं, बाल पूर्णतः कटे हुए, मुंड मुँड़ाकर, संन्यासी के उदासीन वेश में तथा वे मलेच्छों के द्वार पर भिक्षा के लिए हाथ फैला रहे हैं तब प्रेम भूल कर राजा क्रोध से भर उठे। उनके हृदय से समस्त प्रेमभाव जाता रहा। क्रोध में सफेद मूंछों को ऐंठ रहे थे एवं वे बार-बार दाँत पीस रहे थे। राजा अपने साथ सामंतों को लेकर कांपते हुए निकल गये और क्रोधपूर्वक देखते हुए तमककर तुरंत अपने तीखे, तेज, तर्रार घोड़े पर सवार होकर तेजी से वे नर-नारियों के बीच से चल दिए। जिस रास्ते से महाराजा गए, लोग उन्हें आश्चर्यचकित होकर देखते रहे तथा राज दल भी वहाँ से तेजी से धम-धम करते गुजर गया। लोगों को इतना समय नहीं मिला कि किसी से कोई बात कह सके।

मंदिर के पास मुड़ते ही राजा को पुर द्वार दिखाई दिया और वहाँ पर दिखा कि एक भारी भीड़ उन्हीं की तरफ आ रही थी तथा उस भीड़ में चारों तरफ से लोग आकर मिल रहे थे और भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। रास्ते भी दिखाई नहीं दे रहे थे। सभी जगह लोग ही लोग दिखाई दे रहे थे। एक विशाल जन समूह एकत्रित हो गया था। तब राजा ने एक भिक्षु समान व्यक्ति को देखा जिसके संग इतनी भीड़ थी। उस पर नजर पड़ते ही राजा का गुस्सा शांत हो गया। बुद्ध की दयावान आँखें राजा के विकल मुख की ओर टकटकी नजर से देख विनय से झुक गईं। राजा को अपने कुँवर का भाव बहुत प्रिय लगा। राजा ने उनके पूर्ण स्वरूप को पहचान लिया और मन में अनुमान लगा लिया कि उनका वैभव व प्रताप सभी चीजों से बढ़कर था जिस कारण सभी मनुष्य श्रद्धामय, भयमुक्त एवं शांतचित्त होकर उनके पीछे चल रहे थे। फिर भी राजा ने चुप्पी तोड़ी और बोले- "हाय ! होनी को यही होना मंजूर था कि अपने ही राज्य में राजकुमार दबे पाँव इस प्रकार आयें। जिनका जीवन देवताओं को इस संसार में दुर्लभ रहा वे ही आज गेरूआ वस्त्र धारण करके सबके द्वार भीख माँगते फिर रहे हैं। मेरे पुत्र ! इस विशाल साम्राज्य के उत्तराधिकारी ! यह

सारा वैभव तुम्हारा ही है। तुम्हारा जन्म उन राजाओं के वंश में हुआ है जिनके केवल संकेत मात्र से ही इस धरती पर सब कुछ मिल जाता रहा है। उनके आदेश पालन में कोई चूक नहीं होती। तुम्हें अपने पद के अनुसार परिधान धारण कर संपूर्ण ठाट-बाट के साथ संग में चमचमाते भालों व घुड़सवार के साथ आना चाहिए था। यह देखो ! मेरे सारे सिपाही मार्ग पर डेरा डाले हुए हैं। पूरा नगर तुम्हारे स्वागतार्थ आज राजद्वार पर यहाँ खड़ा है। राजकुमार ! तुम इतने दिनों तक कहाँ घूमते रहे ? मैं दिन-रात रो-रो इस मुकुट का भार ढोता रहा। तुम्हारी पत्नी घर में विधवा सी दशा बनाकर बैठी है। तुम्हारे वियोग में वह दीन-हीन और मलीन हो गई है और उसने सब ठाट-बाट, सुख एवं ऐश्वर्य का त्याग कर दिया है। वह तुम्हारे वियोग में न तो कोई गीत-संगीत सुनती है और न ही एक बार भी सुंदर कपड़े पहने। आज तुम्हारे आने की सूचना पाकर उसने स्वर्ण वस्त्रों को धारण किया और गेरूआ वस्त्र-धारी अपने भिखारी पति से मिलने और उसके स्वागत के लिए आतुर है। हे पुत्र ! मुझे बताओ यह सब क्या है ?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे तात ! यह मेरे वंश की परंपरा है।" राजा बोले, "तुम्हारे वंश में सैकड़ों महाराजा हुए हैं लेकिन ऐसा कार्य तो किसी ने भी आज तक नहीं किया । फिर तुम कौन से वंश की बात कर रहे हो?" बुद्ध ने कहा, "कुल परंपरा मरणशीलों की नहीं होती, अपितु बुद्ध अवतारों की होती है और यह युग-युग चलती है। मुझसे पहले भी बुद्ध हुए हैं, आगे भी होंगे। मैं भी उनमें से एक हूँ। बस इतना ही कह सकता हूँ। उन्होंने जो किया वही मैं कर रहा हूँ। जो कुछ भी हो रहा है वह पहले भी हो चुका है कि एक राजा ने एक योद्धा की पोशाक में अपने ही नगर द्वार पर अपने ही पुत्र को भिक्षु वेश धारे स्वागत किया।"

"सत्य, प्रेम और आत्म संयम से सर्वशक्तिमान होना परम प्रतापी राजाओं के भू-पालन से भी अधिक श्रेष्ठ है। कर्णधार, उद्धारक एवं सकल जगत के तथागत ने पहले भी शीश नवाया जैसा मैं आज नतमस्तक हूँ।

उन्होंने पितृ-ऋण एवं अलौकिक प्रेम अपनाकर उन्हें जो अमूल्य निधि मिली उसका पहला फल लाकर अपने पिता को अति प्रसन्न मन अर्पित किया। हे तात ! मैं भी उसी प्रकार आपको अर्पण करना चाहता हूँ।" राजा ने अति चकराकर पूछा, "कौन सी निधि ?" तब बुद्ध ने प्रसन्नचित्त होकर राजा की अँगुलियाँ पकड़ीं एवं गलियों के बीच शांति एवं धर्म की शिक्षा एवं 'आर्य सत्य' का उपदेश देते हुए चले जिसमें सारा का सारा ज्ञान निहित है। इसी बीच उन्होंने 'अष्टांग मार्ग' भी समझाया जिस पर जो भी चाहे राजा, भिखारी, ब्राह्मण या मलेच्छ-नीच कोई भी चल सकता है। फिर उन्होंने मोक्ष के लिए आठ उदार सोपान बताए, जिन्हें संसार में जो भी नर-नारी चाहे ग्रहण कर सकता है। इस तरह इस अमिट निर्वाण का मार्ग अपनाकर मूर्ख, बुद्धिमान, छोटा-बड़ा, जवान, वृद्ध सभी समान रूप से ज्ञान ग्रहण कर संसार के इस भव चक्र से निकल अमर्त्य निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। वे सब चलते-चलते महल के द्वार तक जा पहुँचे। राजा बुद्ध को बार-बार देख रहे हैं और तृप्त नहीं हो रहे हैं। अमृत से भी अधिक प्रिय वचन सुनकर राजा बहुत रोमांचित हुए तथा अत्यंत भक्ति भाव से उनका भिक्षा पात्र अपने हाथ में ले लिया। यशोधरा की आँखें अब खुल गई थीं। उसको ज्ञान की एक नई ज्योति मिल चुकी थी। अब उसकी तड़प समाप्त हो चुकी थी। उसके आँसू सूख चुके थे तथा उसके मुख पर एक नई कोमल चमक आ गई थी। इस प्रकार उस शुभ रात्रि में राजकुल ने बुद्ध का जय-जयकार किया तथा मंगलमय शांति मार्ग पर चलने के लिए प्रविष्ट हुए।

अष्टम सर्ग
धर्म-प्रवचन

एक विस्तृत फैला हुआ खण्डहर आज भी रोहणी नदी के किनारे स्थित है। उस रम्य स्थल का नाम है 'नागरा'। यहाँ दूर-दूर तक दूब से आच्छादित हरा-हरा मैदान दिखता है। यदि वाराणसी के मंदिर से चलकर ईशान दिशा में जायेंगे तो पाँच दिनों तक चलने के बाद आपको यह सुंदर स्थान मिलेगा जहाँ से हिमालय पर्वत की श्वेत चोटियाँ दिखाई देती हैं। यह क्षेत्र पूरे वर्ष फूलों तथा धुंध से आच्छादित रहता है। बहती हुई नदियों के चमकते स्वच्छ जल से इस क्षेत्र के खेत-बागीचे हरे-भरे दिखते हैं। यहाँ जमीन का ढलाव सुगम है तथा वृक्षों की छाया शीतलता देती है। सदियों से आज तक इस क्षेत्र की पूरी आत्मा पवित्र है। आप यदि आज भी यहाँ जायेंगे तो आपको पुनीत भाव बरसता हुआ दिखेगा। यह क्षेत्र बारहों मास सिंचित सरस बागों से भरा-पूरा तथा हरा-भरा रहता है। संध्या की शीतकालीन हवा मानो श्वाँस रूप में उलझे हुए झुरमुटों पर तेजी से आ रही है व नक्काशी किए हुए लाल पत्थरों के ऊँचे ढेर पर पड़ रही है, जिसे अंजीर की लता के जड़ और तने आलंबित है और जो लहलहाते पत्तों और घास के घूंघट से ढँका है। सांप धीरे-धीरे लाह के टूटे नक्काशीयुक्त देवदार के शहतीर पर रेंगकर आ रहा है ताकि घुंडी बनाकर गहराई में स्थित पत्थर पर अपने आप को विराजित कर सके। रंगीन फर्श पर छिपकली घूमती है और उछलकूद करती है। पीपल के वृक्ष की जड़ें इन पत्थरों के ढेर के मध्य से निकल कर एक जाल की भाँति फैल गई हैं और चारों तरफ पीपल के पत्ते पानी के समान फैले हुए हैं। जिन आंगनों में कभी राजा - महाराजा टहलते थे वहाँ अब गिरगिट घूमते हैं। जिस जगह राजा के सिंहासन सजते थे वहाँ अब सियारों का वास है। टूटे सिंहासन पर भूरे रंग की लोमड़ी निर्भय होकर अपने बच्चों को जन्म देती है। सब कुछ बदल चुका है। सिर्फ चोटियों, जल-प्रवाह, ढलावदार मैदान तथा

मंद-मंद वायु में कोई बदलाव नहीं आया है। बाकी सभी कुछ, जीवन के सुन्दर दृश्यों की तरह बदल चुके हैं।

यह वही पहाड़ी है जहाँ बुद्ध ने एक सुन्दर, स्वर्णिम नीली संध्या में जब सूर्य अस्ताचल को जा रहे थे, अपने नियमों की शिक्षा दी थी। देखिए ! आप इसे पवित्र पुस्तकों में पढ़ेंगे कि उस आनन्ददायक स्थल पर किस प्रकार सभा हुई थी जहाँ प्राचीन काल में एक अति सुन्दर उद्यान हुआ करता था, जहाँ घूमने की पगडंडियाँ हुआ करती थीं, झरने और तालाब तथा गुलाबों की सीढ़ीदार क्यारियाँ सुन्दर मण्डप से घिरे हुआ करते थे। आज सिर्फ पर्वत की चोटियाँ, नदी, खेत और हवा ही समय की मार से बचे हुए हैं। जहाँ कभी जीवन के भरपूर दृश्य विद्यमान रहते थे आज वहाँ की शोभा नष्ट हो गई है। यह वही स्थल है जहाँ कभी शाक्य वंश के राजा शुद्धोदन राज करते थे। पूर्व काल में यह स्थान बहुत सुन्दर था। इसके चारों ओर मनोहर विश्राम गृह बने हुये थे। बीच-बीच में रास्ते कटे हुये थे। नालों पर बांध बने हुए थे। फव्वारे लगातार चलते रहते थे और सरोवर जन-जन के मन को लुभाते थे। कमल के फूलों के घेरों के भीतर चमकता चबूतरा ऐसा दिखाई देता था जैसे बहुत से आंगन विद्यमान हों और उनमें बहुत सुन्दर स्तम्भ खड़े हों। राजभवन के इधर-उधर तोरण लगे हुये थे, जिनके कलश दूर से ही सूर्य की भाँति चमकते थे। इसी स्थान पर एक दिन बुद्ध स्वयं विराजमान हुए थे और लोग भी उन्हें भक्ति-भाव से घेरकर एकटक दृष्टि डाले हुये एकत्र हुये थे। वे सभी उनके मुखारविंद से ज्ञान भरी वाणी सुनने के लिए अति उत्सुक थे जिसे सुनकर संसार शांति की ओर उन्मुख होता है तथा इंसान क्रूर बुद्धि त्याग देता है।

सांसारिक बंधन काटने की आशा में आज करोड़ों जन बुद्ध के **अनुयायी** बनकर धर्म मार्ग पर चलते हुए बुद्ध के त्रिरत्न : बुद्ध, धर्म और संघ में अनुरक्त हो गये हैं। उस सांध्यबेला की सभा के मध्य में बुद्ध

विराजमान थे। उनके पार्श्व में राजा शुद्धोदन बैठे थे और सभी सामंत धैर्यपूर्वक उनके चारों तरफ विराजमान थे। देवदत्त, आनन्द आदि सभी सभा में उपस्थित थे। इस स्थल पर धर्म दीक्षा दी गई तथा लोगों को संघ में शामिल भी किया गया। बौद्ध संघ के सभी श्रेष्ठ शिष्य - महामोग्गलान, सारिपुत्त आदि विराजमान थे। बुद्ध का सुपुत्र राहुल भी उनके वस्त्र का एक किनारा पकड़कर आश्चर्यचकित नेत्रों से उनका भव्य मुखमण्डल निहार रहा था।

तथागत के चरण कमलों के पास यशोधरा आज अपनी तन-मन की समस्त पीड़ा भूलकर विराजमान थी। उनके हृदय में आज ऐसे शाश्वत प्रेम का आभास हो रहा था जिसके सामने क्षणिक, इन्द्रियजनित आनन्द कुछ भी नहीं है। आज उसे एक ऐसे नवजीवन का आभास हुआ जिसे न तो वृद्धावस्था परास्त कर सकती थी और न ही मृत्यु अपने डंक से उसका नाश कर सकती थी। आज वह भी शाक्य-मुनि के संग इस अपूर्व विजय की भागीदारिनी बनी और अपने आपको धन्य मानकर वह खुशी से फूली नहीं समा रही थी। उनके गेरुआ वस्त्र का छोर अपने सिर पर डाल उनके पवित्र बायें हाथ को सादरपूर्वक इस प्रकार पकड़ी थी जैसे मानो वह उसका अपना ही हाथ हो। इस प्रकार वह जगदाराध्य के बिल्कुल निकट थी जिनके निकट आने हेतु तीनों लोकों के प्राणी भी अति व्याकुल रहते हैं।

बुद्ध के मुखारविंद से जो अति प्रभावशाली नव ज्ञान प्रवाहित हुआ, मैं बुद्धिहीन उसका सौवाँ अंश भी आपको नहीं बतला सकता। वर्त्तमान काल में जन्म लेकर मैं उस दिव्य ज्ञान के बारे में कैसे जान सकता हूँ ? यदि मैं उनके प्रेम को पहचानकर उनकी भक्ति को हृदयंगम करूँ तो शायद कुछ जान सकूँ। विद्वान आचार्यवृंद जो प्राचीन ग्रंथों में लिख गए हैं, उनसे बढ़कर मैं कुछ भी कह सकूँ इतनी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तथागत ने जो बहुमूल्य उपदेश दिया मैं उसका बहुत थोड़ा सा सार

जानता हूँ और उसको अपनी बुद्धि के अनुसार प्रस्तुत करने की धृष्टता कर रहा हूँ। तथागत का उपदेश अनगिनत लोग मौन रहकर अपने कर्ण बिन्दुओं को सुवासित करते हुये सुन रहे थे और जितने लोग सशरीर वहाँ विद्यमान थे उससे कहीं अधिक लाखों-करोड़ों की संख्या में अदृश्य श्रोतागण भी ध्यान लगाकर सुन रहे थे। देवतागण एवं पितृजन सभी उनकी सभा में अप्रत्यक्ष रूप से उपस्थित थे। उस समय सभी दिव्य लोक जीव रहित बिल्कुल सूने हो गए थे, क्योंकि सभी प्राणी मृत्युलोक में बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए कूच कर गये थे। सूर्य देवता की ज्योति मद्धिम न पड़ सामान्य तेज एवं लालिमा बिखेर रही थी और बड़ी ही लम्बी अवधि तक सभी को लुभा रही थी। वह ज्योति पर्वत शिखर के नेपथ्य से अनुराग सहित झाँक रही थी और सभी को प्रिय लग रही थी। ऐसा लग रहा था मानो रात घाटियों में और दिन पहाड़ पर रुक कर तथागत की अमृतमयी वाणी को सुनने को उत्सुक थे। लगता था जैसे स्वर्ग की थकी हुई कोई सांवली अप्सरा अपनी सुध-बुध खोकर मोहित खड़ी थी और उसके घने, काले बालों की लटें चारों तरफ फैल गई हों, तारों की कतारें मोतियों की माला की भाँति सारे अम्बर में बिखरी हुई हों। आकाश रूपी नारी के सुन्दर ललाट पर अर्ध चन्द्रमा मानो बिन्दी के रूप में शोभायमान हो रहा था। लगता था जैसे प्रकृति ने काले रंग की साड़ी पहन रखी हो। वहाँ मंद-मंद सुगन्धित हवा ऐसे बह रही थी जैसे कोई प्रियतम की विरहनी बाला रुक-रुक कर श्वांस छोड़ रही हो। ऐसे अति उत्तम काल और दशा में बुद्ध अति पवित्र, कल्याणदायक, हृदयस्पर्शी तथा उदार उपदेश अपने मुखारविन्द से निसरित कर रहे थे। चाहे ऊँचे कुल का हो या नीच, आर्य हो या मलेच्छ, कोल हो या भील या किरात, जिसने भी ये अनमोल वचन सुने, यद्यपि वे ऐसा उपदेश पहली बार सुन रहे थे, उन्हें तथागत की ज्ञान भरी बातों में अपना-अपना कल्याण दिखाई दे रहा था। उनके प्रवचन की विशेषता यह थी कि सभी उनके उपदेश को अपनी-अपनी मातृभाषा में सरलता से सुन रहे थे। इस प्रकार लोगों की भीड़ में वहाँ मात्र देवता

एवं पितृजन ही केवल एकत्र नहीं हुये थे। ऐसा लग रहा था जैसे कीट-पतंगे, पशु-पक्षियों में भी ज्ञान की दिव्य ज्योति जल रही थी। जिस अलौकिक प्रेम से उनका हृदय परिपूर्ण था उस प्रेम की अनुभूति सभी को होने लगी थी तथा उनके वचनों से उन्हें अपने मोक्ष की आशा दिखाई देने लगी थी। भेड़िया, बाघ, बन्दर, भालू, सियार, कुत्ता, हिरण, गीदड़ एवं मानो कई प्रकार के रत्नों से शोभित मयूर, मोती के समान नयनों वाले कबूतर, सफेद चोंच वाले पक्षी, काले कौवे और निरामिष-सामिष दोनों ही प्रकार के पक्षी, यहाँ तक कि जुगनू भी उनके उपदेश को ध्यानपूर्वक सुनने को व्याकुल थे। अत्यधिक प्लावनपटु मेढक, गिरगिट, गोह, चितकबरा साँप और चंचल रंगीन मछलियाँ, जो हर उठती तरंग के साथ उछलती हैं, वे सब भी उस समय मानव से जुड़ गए थे जिसका मन उन पशु-पक्षियों के समान निर्मल एवं निष्कपट नहीं है। अब सभी प्राणियों का प्रसन्नचित मन इस भवसागर के बन्धनों से मुक्ति पाना चाहता था। राजा को धर्म का मर्म तत्व बताकर तथागत ने जो उपदेश दिया वह इस प्रकार है -

ऊँ अमितायु !

जिसे मापा नहीं जा सके उसे अपनी बुद्धि द्वारा शब्दों की सीमा में नापने और बाँधने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जो अनन्त है अर्थात् जिसकी कोई सीमा नहीं है उसको मानव मन व बुद्धि कैसे नाप सकेगी, कैसे छू सकेगी ? अतः उसको नापने की धृष्टता नहीं करनी चाहिए। बुद्धि के स्तर पर जिज्ञासु होकर अगर कोई अपनी बौद्धिक कौतूहल शान्त करने के लिए प्रश्न करता है तो वह भूल करता है। उसी प्रकार क्षुद्र ज्ञान वाला मानव मस्तिष्क यदि उस प्रश्न का उत्तर देने का दुःसाहस करता है तो वह भी भूल करता है। प्रश्नकर्त्ता भी भूल करता है और उत्तर देने वाला भी भूल करता है। अतः इस प्रसंग पर निरर्थक वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। शास्त्र बताते हैं कि मानव जीवन के आरम्भ के समय

सर्वत्र घनघोर अँधकार फैला हुआ था और उस अखंड महारात्रि में मात्र ब्रह्मा ही विराजमान थे। अरे मूर्ख मानव ! न तो आदि के फेरे में पड़ो और न ही ब्रह्मा के ऐसे अस्तित्व को सत्य जानो क्योंकि उस अनंत को न तो हमारे भौतिक नेत्रों से देखा जा सकता है और न ही बुद्धि से परखा जा सकता है। मानव चक्षु द्वारा उसका किसी भी तरह अवलोकन नहीं किया जा सकता। मन के घोड़े मानव कितना भी दौड़ा ले, वह उसका भेद नहीं खोज सकेगा। अगर एक पट्ट उठ जाता है तो दृश्य स्पष्ट नहीं दिखेगा क्योंकि उसके पीछे दूसरा पट्ट और फिर उसके पीछे अनेक पट्ट विद्यमान होंगे। एक पट्ट उठेगा पर असंख्य पट्ट विद्यमान रहेंगे और इन पटों का कोई अंत नहीं दिखाई देगा। समय की समाप्ति पर जैसे तारे बिना किसी से कुछ पूछे टूटकर अपनी मंजिल की ओर चले जाते हैं यह जीवन यात्रा उसी प्रकार चलती जाती है। संसार में जीवन-मृत्यु, सुख-दु:ख, शोक-उल्लास का चक्र समय के अंतराल से अथक चलता ही रहता है, कभी रुकता नहीं। यह नदी रूपी जीवन बिना किसी विश्राम के चलता रहता है। नदी अपने उद्‌गम स्थान से निकलकर उछलती, कूदती, मचलती, निरंतर अविरल, बिना किसी विश्राम के बहती हुई सागर में मिल जाती है। नदी में एक के बाद एक लहरें उठती रहती हैं। यह सभी तरंगें देखने में एक समान लगती हैं, समरूप नजर आती हैं। पर क्या वे सभी लहरें एक ही हैं ? कदापि नहीं। जीवन चक्र भी ठीक ऐसा ही है। नदी का जल समुद्र से मिलने के बाद सूर्य की किरणों के पड़ने से वाष्प में परिणत हो जाता है और हल्की होकर ये वाष्प की बूँदें आकाश की ओर कूच कर जाती हैं। फिर वही वाष्प की बूँदें आकाश में बादलों की घनघोर घटा के रूप में घिर आती हैं और वर्षा की बूँदों के रूप में परिणत होकर पर्वत शिखर पर बरसती हैं और पुन: धारा का रूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार वह धारा पुन: नदी के रूप में परिणत होकर अनंत की यात्रा पर चल देती है। समुद्र-मिलन के लिए नदी पुन: पहाड़ से दौड़ पड़ती है और बहती हुई समुद्र में आ अपना अस्तित्व खो देती है। नदी का यह चक्र

अन्तहीन चलता रहता है। यह जीवन-चक्र भी नदी की भाँति चलता रहता है। जन्म, बालपन, युवावस्था, बुढ़ापा और फिर मृत्यु ! मृत्यु के बाद पुनः जीवन की उत्पत्ति और पुनः वही प्रक्रिया। मात्र इतना समझ लेना ही पर्याप्त होगा कि यह धरा, स्वर्ग और सभी धाम मायावी दृश्य हैं और ये सभी मात्र परिणाम रूप हैं। दुःखदायी जीवन-मरण का यह चक्र घूमता ही रहता है जिसको कोई किसी भी प्रकार रोक नहीं सकता। किसी से कभी भी प्रार्थना मत करो क्योंकि प्रार्थना करने मात्र से यह अँधेरा कभी न समाप्त हुआ है और न होगा। शून्य से याचना मत करो क्योंकि वह सुन नहीं पायेगा और तुम्हें दुःख होगा। बेकार ही हम सभी अपने शरीर को भिन्न-भिन्न प्रकार का कष्ट देते हैं और सब व्यर्थ ही तप करते हैं। नाना प्रकार के यत्नों से किसी को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति नहीं मिल सकती।

असमर्थ देवी-देवताओं को भेंट आदि चढ़ाकर किसी भी चीज की कामना मत करो। अनेक प्रकार से स्तुति कर और बलि देकर, रक्त बहाकर किसी भी चीज की चाह मत करो। तुम्हें मुक्ति का मार्ग अपने अंदर स्वयं ही ढूँढना होगा क्योंकि हर व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य एवं कारागार का निर्माता है। मनुष्य के हाथों में किसी भी प्रकार देवताओं से कम सामर्थ्य और शक्ति नहीं है। देवता, मनुष्य और पशु इत्यादि जितने भी जीव इन सभी लोकों में हैं वे सभी अपने कर्मानुसार ही सांसारिक कष्टों का भार उठाते रहते हैं और यथाकर्म ही सुख-दुःख भोगते रहते हैं। मनुष्य के वर्तमान का सृजन उसके पूर्व कर्मों से ही होता है। वर्तमान से ही ज्ञात होता है कि उसका भूतकाल सही था या नहीं। स्वर्गलोक में जो देवतागण आनन्दपूर्वक विराजते हैं वह भी उनके पूर्व जन्मों के पुण्य कर्मों का ही फल है।

सद्कर्मों के प्रताप से ही हम स्वर्ग में आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं अथवा नरक की अग्नि में जलते रहते हैं। कष्टों को भोगकर, अपने द्वारा

अ।जत दुष्कर्मों का क्षय कर मनुष्य अपने द्वारा सृजित दु:खों को कम करता जाता है। कुछ भी शाश्वत नहीं है, सब वस्तुएं क्षणभंगुर, नाशवान हैं। पुण्य कर्म का प्रभाव भी अंततः समाप्त ही हो जाता है और भोगने से पाप कर्मों के फल का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य दास के रूप में जन्म लेकर अति दयनीय दशा में अपना जीवन अर्जन करता था, वह भी अपने पुण्य के प्रताप से राजा बन नाना प्रकार के भोग-विलास भोग सकता है। दूसरी ओर एक चक्रवर्ती सम्राट ने अगर अपने लिए पुण्य कर्मों का सृजन नहीं किया है तो वह फटे चिथड़ों में भिखारी बनकर गलियों में दर-दर की ठोकरें खाता हुआ देखा जा सकता है। इस प्रकार सद्कर्मों द्वारा तुम अपने आप को इन्द्र आदि देवताओं से भी ऊपर उठा सकते हो और बुरे कर्मों का सृजन कर कीड़े-मकोड़ों की योनि से भी नीचे जा सकते हो। जीवन का अंत इन दोनों ही प्रकार से हो सकता है।

हे प्रियवर भ्राता ! यह अदृश्य जीवन चक्र अंतहीन रूप से निरंतर, अविरल चलता ही रहता है। इस यात्रा में न तो कोई स्थायित्व है, न कोई पड़ाव, न मन की शांति और न कहीं विश्राम। चक्र की भाँति जो एक समय ऊँचाइयों को छूता था वह अगले ही क्षण औंधे मुँह गिरता है और दूसरी ओर जो नीचे पड़ा हुआ था वह ऊपर चढ़ जाता है। इस प्रकार यह जीवन-चक्र सदैव घूमता ही रहता है, एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता।

जीवन-मरण के चक्र से मत बंधे रहो क्योंकि हम सदा उस बंधन से बंधे ही रहें और विमुक्त होने की युक्ति न हो ऐसा नहीं है। यह बंधन शाश्वत, सनातन सत्य नहीं है। यह सुनिश्चित है कि तुम सदा के लिए इससे बंधे हुए नहीं हो । प्रियवर ! यह अंतिम सत्य नहीं है और ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। हे बंधु ! अगर तुम इसे अपनी नियति समझते हो तो मेरे कथन को सच मानो कि सब दु:खों से शक्तिशाली है तुम्हारा

संकल्प और दु:खों से मुक्ति पाने की दृढ़ इच्छाशक्ति। यदि तुम दृढ़ निश्चय कर सत्य के मार्ग पर अग्रसर होते हो तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण होगा और क्रम दर क्रम यह कल्याण बढ़ता ही जाएगा। मैं भी तुम्हारी तरह सभी के दु:खों से दु:खित होकर अश्रु बहाया करता था और रोता था। उन दु:खों को देखकर मेरा भी हृदय फट जाता था परंतु मुझे आज देखो ! मैं सब बंधनों को तोड़कर, बुद्धत्व प्राप्त कर आनन्दपूर्वक हँस रहा हूँ क्योंकि मैंने मुक्ति का मार्ग खोज लिया है। वे सब इसे सुनें और समझें जो अब तक दु:खों की मार से मर रहे हैं। इसे स्पष्ट जानें कि मुक्ति का मार्ग एक शाश्वत सत्य है। तुम सब स्वयं अपने स्वार्थ हेतु दु:खों का संचय करते हो और दु:खों की वृद्धि करते हो। कोई दूसरा तुम्हें इस जीवन-मरण रूपी निष्ठुर चक्र से नहीं बाँधता और न अपने इशारों पर तुम्हें नचाता है। कोई भी तुम्हें बाध्य नहीं करता कि तुम जीवन-मरण के चक्र से चिपके रहो, उस चक्र के साथ ऊपर-नीचे आते-जाते रहो, उस चक्र का आलिंगन करो और उसे चूम-चूमकर मिथ्या ही प्रसन्न होवो, इस प्रक्रिया में खून से लथपथ हो जाओ, फिर भी चक्र से मुक्त होने की चेष्टा न करो। इस चक्र के पहिए से तुम्हें आँसू के अतिरिक्त कुछ और प्राप्त होने वाला नहीं है। तुम उसकी नाभि से मोहित होते हो। उसमें भी आकर्षित होने योग्य कुछ नहीं है। तुम किसी के आदेश से कष्टदायक, अश्रुपूर्ण, सांसारिक वस्तुओं के उपभोग से बँधा जीवन नहीं जीते हो वरन् तुम इसे स्वतंत्रतापूर्वक अपने-आप चुनते हो और फिर बार-बार दुष्चक्र में फँसकर कष्टों को भोगते हो।

आओ ! आज मैं तुम्हें अत्यधिक सुंदर, शाश्वत सत्य मार्ग के दर्शन कराता हूँ। स्वर्ग-नरक से परे आकाश के समस्त ग्रहों एवं तारों से भी ऊपर, ब्रह्मलोक से भी दूर एक सनातन शक्ति विराजती है, जिसे इस संसार में 'धर्म' के रूप में जाना जाता है। वह शक्ति मात्र नियम का अनुपालन करती है और सर्व कल्याण हेतु हितकारी है। उस शक्ति का

न तो कोई आदि है और न कोई अंत। उसके नियामक अपरिवर्त्तनीय हैं। सत्योन्मुखी होकर वह सृष्टि को गति प्रदान करती है। उसका स्पर्श खिले हुए गुलाब के फूल पर स्पष्ट दिखाई देता है। उसके हाथों की सुंदर कलाकारी के चमत्कार से कमल के फूलों का दल खिल उठता है। इस धरा के गर्भ में वह शांत बीज के रूप में समाहित होकर नव वसंत ऋतु का सृजन करती है। वह अपनी कला से आकाश के वक्ष-पटल पर बादल रूपी चित्र अंकित करती है। मोर के सिर पर बना चन्द्रमुकुट भी उसी की कला को प्रदर्शित करता है।

नक्षत्र व ग्रह उसी के आदेश पर घूमते हैं। बादलों में बिजली का चमकना एवं वर्षा होना, पवन का चलना ये सभी उसी के विधि के विधान हैं। वह मानव हृदय को अति घोर अंधकार से बाहर निकालकर अति श्रेष्ठ हृदय का निर्माण करती है। उसी प्रकार यह छोटे-छोटे अंडों से पक्षियों की गर्दन बाहर निकालने का भी प्रबंध करती है। वह शक्ति प्रत्येक पल, प्रत्येक क्षण अपने कार्य में सदैव संलग्न रहती है। वह काल-कलवित हुए पदार्थो का भी सुंदर विनियोजन करती है। उसी के विधान से मधुमक्खियों द्वारा शहद के छत्तों का निर्माण होता है। उसी की शक्ति से चींटी सदा अपना मार्ग पहचानकर आगे चलती है। सफेद कबूतर भी उसी के प्रताप से आकाश में उड़ते हैं। उसी द्वारा प्रदत्त शक्ति से गरूड़ अपने विशाल पंख पसारता है और तेज गति से उड़कर अपना शिकार पकड़ता है। वही शक्ति मादा भेड़िए को अपने बच्चों के पास भोजन लेकर भेजती है। जिसका कोई भला करने वाला नहीं है, उसका भी वह शक्ति भला करती है। वही शक्ति किसी को भी कुंठाग्रस्त नहीं होने देती तथा जो जहाँ जैसा होता है उसके लिए वहाँ उसी की रुचि के अनुसार प्रबंध कर देती है। वही शक्ति माता के स्तनों में अमृतमय दुग्ध का सृजन करती है और वही साँप की जीभ पर भी दुग्ध रूप में जहर की बूँदें पहुँचाती है। आकाश रूपी मंडप को तारों और ग्रह नक्षत्रों से भी वही सजाती है। संसार में सभी ताल

व सुरों का निर्माण कर सबको अपनी धुन पर नचाती है। वही धरती के गर्भ के अंदर सोने, चाँदी, मणि, मोतियों रूपी अमूल्य धरोहर को छुपाकर संजोती है। हरे-भरे मनोहर वनों के बीच मनुष्य के लिए वह दिन-रात नाना प्रकार के वनस्पतियों रूपी खजाने खोलती रहती है। शाल के वृक्ष के नीचे पड़े हुए बीज को पोसती है और फिर अंकुर को फोड़कर अपनी युक्ति से धीरे-धीरे कोमल कुसुम सृजित करती है। वही खाती है, वही बचाती है, वही वध करती है या वध से बचाती है। वह फल के विधान मात्र को छोड़कर और कुछ नहीं करती है।

जीवन रूपी करघे पर प्रेम रूपी सूत तानती है। उसी से जीवन-मृत्यु के करघे ढलते हैं। वही बनाती है और वही बिगाड़ती है या फिर बिगड़ने के बाद वही सुधारती भी है। उसका कर्त्तव्य परायण हाथ काल दर काल चलता रहता है तब जाकर कहीं किसी मनोरम वस्तु का सृजन होता है। उसके द्वारा किए गए कार्य ही जगत में दृष्टिगत होते हैं। उसके साथ ही अनन्य अगोचर कार्य होते हैं, नेत्रों से परे घटित होते हैं, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती। मनुष्य के मन में सद्बुद्धि, संकल्प, विचार, इच्छा आदि सभी उसी के द्वारा उत्पन्न होते हैं। वही शक्ति सभी को धर्म एवं अन्य नियमों में बाँधती है। वह मनुष्य की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहती है और सच्चा वरदान देती है। बिना वाणी के भी घनघोर घन के गर्जन से अधिक बलवान गर्जन करती है। केवल मनुष्य मात्र के भाग्य में ही प्रेम और दया रूपी अनुपम गुण होते हैं क्योंकि युगों-युगों तक कष्ट सहकर और तपकर ही अचेतन नर-नारी के रूप में जन्म लेता है। जो मनुष्य इस शक्ति की उपेक्षा करता है और इससे विमुख हो जाता है वह भयंकर भूल करके सब कुछ गवाँ देता है। इसके विपरीत इस शक्ति के अनुरूप हो मनुष्य सब कुछ पा जाता है। मनुष्य द्वारा संचित पुण्य से ही सच्ची शांति, सुख और आनन्द मिलता है और छुपे पापों के परिणाम स्वरूप मानव जीवन में दु:खों एवं द्वन्द्व का सृजन होता है। इस दृष्टि से

छुपकर कोई भी कार्य नहीं हो सकता। जो कुछ भी घटित होता है उस पर इसकी दृष्टि रहती है। यह शक्ति सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता और सर्वविद्यमान है। यह अदृश्य होते हुए भी सब जगह विद्यमान रहती है। आप जितने पुण्य कार्य करते हैं, उतने ही पुण्य के अनुसार आपको फल मिलता है। थोड़ा सा भी गलत कार्य करने का कटु परिणाम आपको भुगतना पड़ता है। इस शक्ति के पास न तो कोई क्रोध है और न कोई क्षमा। वह सदैव समभाव रहती है। उसके विधान की तराजू में सब कुछ बराबर तौला जाता है अर्थात् जितना पुण्य आप संचय करते हैं उतना ही आप अच्छा फल पाते हैं और जितने बुरे कर्म करते हैं आपको उतना ही कष्ट भोगना पड़ता है। यह किसी समय विशेष की बात नहीं है। इसके अविचल नियमों के अनुसार सब अपने कर्मों का प्रतिफल आज नहीं तो कल अवश्य ही पाते हैं। इसी नियमानुसार किसी की हत्या करने वाले की स्वयं हत्या होगी क्योंकि उसको अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। इसी नियम के अन्तर्गत अत्याचारी शासक अन्ततोगत्वा अपना समस्त साम्राज्य खो देता है। अमृतवाणी बोलने वाली जीभ इसके सम्मुख जड़वत हो जाती है। चोर और ठग जितनी धन-दौलत इस संसार से चुराते हैं, उसका दुगना भरते हैं। यह शक्ति सत्य मार्ग की स्थापना में सदैव प्रवृत्त रहती है। इस शक्ति को कोई भी इसके पथ से च्युत नहीं कर सकता और न इसे कोई रोक ही सकता है। मानव-जीवन में प्रेम का प्रसार कर उसे पूर्णता और शांति प्रदान करना ही इस शक्ति का लक्ष्य है। अतः हे बन्धु ! इस नियम के अनुसार चलना ही सबके लिए श्रेयस्कर है।

सभी नीति एवं सभी शास्त्र एक ही सत्य एवं खरी बात कहते हैं कि जो कुछ भी हमारे इस जन्म में घटित होता रहा है, हमारे पूर्व जन्म में किए गए कर्मों का ही फल है। पूर्व जन्मों में किए गए पाप कर्मों से शोक और दु:ख का निर्माण होता है जबकि पूर्व जन्म के पुण्यों के प्रसाद स्वरूप

मानव सब सुख भोगता है। खेत-खलिहान हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझा देते हैं कि जैसा हम बोएंगे वैसा ही हम काटेंगे। यहाँ अन्न से अन्न और तिलहन से तेल ही उपजता है। अगर हम बबूल का पेड़ बोयेंगे तो उससे कंटक झाड़ी और विष की लता ही काटेंगे। आम कहाँ से प्राप्त होंगे ? इस प्रकार यह शून्य इस संसार में किए गए कर्मों को लगातार परखता रहता है और इसी के प्रतिफल में मानव भाग्य निर्मित होता रहता है। हमने पिछले जन्म में जो अन्न और तिल बोये थे उन्हीं को काटने के लिए हमारा यह जन्म हुआ है अर्थात् पिछले जन्म के पाप-पुण्यों से अर्जित सुख-दुख को भोगने के लिए ही हमारा यह जन्म हुआ है। बेर, बबूल, काँटेदार झाड़ियाँ, विष की बेल, जो कुछ भी उग आया है उन सबका फल मानव को खाना ही पड़ता है अर्थात् हर प्रकार के कष्टों को झेलना ही पड़ता है और फिर उस दु:ख को झेल वह पुनः मर जाता है। परन्तु जो उचित उपाय कर इन सब घास-पतवार को जड़ से उखाड़ देता है और उनकी जगह यदि इस धरा पर श्रेष्ठ बीज बोता जाता है तो फिर उसके लिए यह धरती स्वच्छ और सुंदर फसलों से लहलहाती जाती है और प्रचुर मात्रा में फसल के उत्पादन से धरती भी प्रसन्न होती है। जो व्यक्ति जीवन पाकर देखता है कि दु:ख का सृजन कहाँ से होता है और शरीर के ऊपर जो भी बोझ पड़ता है उसे धैर्यपूर्वक सहता जाता है, जो कुछ भी पाप पूर्वजन्म में किया उसको सत्य के सम्मुख प्रस्तुत हो स्वीकार कर लेता है और पूरा दण्ड भर देता है, अहंकार को त्याग स्वच्छ व निर्मल मन का निर्माण करता है, स्वार्थ सिद्ध करने में उसकी रत्ती मात्र भी रूचि नहीं होती, वह सभी मनुष्यों के प्रति पुण्य कर्मों का संचय करता है। यदि कोई नम्र बनकर अपने साथ हो रहे अपकार को सह ले और उसके बदले अवसर पाकर जितना बन सके उतना सभी के प्रति उपकार करता जाए और यदि वह दिन-प्रतिदिन सहृदय, पवित्र, धैर्यवान, न्यायप्रिय, सुशील, सच्चा, मृदुभाषी और गंभीर होता जाए और यदि प्रतिक्षण मूल से तृष्णा को उखाड़ने में तल्लीन रहे तो वह अवश्य ही जीवन में एक दिन वासना

का नाश कर लेता है। जीवन-लीला शेष होने के समय अशुभ अर्थात् बुरे कर्मों का कोई भाग शेष नहीं रहता और पूर्वजन्म का लेखा पूर्ण रूप से चुक जाता है। फिर केवल शुभ कर्मों का प्रभाव ही शेष रह जाता है और वह उन पुण्य कर्मों के प्रभाव स्वरूप मंगल कार्यों में ही तल्लीन रहता है। उसे फिर वह नहीं मिलता है जिसे हम जीवन कहते हैं। जो कुछ भी उसे अभी तक घेरे चला आ रहा था वह समाप्त हो जाता है। उसको वह गंभीर लक्ष्य प्राप्त हो जाता है जिसके हेतु वह बार-बार मनुज शरीर धारण करता था। वह जीवों के जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है और जिन कष्टों को भोगने हेतु यह मानव शरीर मिला था उस सब का भुगतान हो जाता है। मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। फिर उसे वासना का यह जाल नहीं सता सकता और न उस मानव के माथे पर फिर से कलंक का लेशमात्र भी टीका लग सकता। संसार के सुख-दु:ख उसके मन की चिरस्थायी शांति को भंग नहीं कर सकते। जीवन-मरण का चक्र उसे फिर फँसा नहीं सकता। वह परम पद पूर्ण निर्वाण को प्राप्त कर जाता है। इस जीवन चक्र को पार कर वह नित्य परम शांत जीवन में विलीन हो जाता है। इसमें कोई भ्रम नहीं है कि वह धन्य-धन्य होकर बिना किसी कर्म के अवशेष के उस परम शक्ति में ऐसे मिल जाता है मानो ओस की एक बूँद अन्ततोगत्वा सागर में जाकर समा जाती है।

ओं मणिपद्मे हुं

कर्म का यही सिद्धांत है और इसको जान लेना चाहिए। जब पाप कर्मों के फल का कष्ट भोगना समाप्त हो जाता है तो जीवन के प्रकाश पुंज का उसी प्रकार अंत हो जाता है जैसे दीपक की लौ उसके तेल की समाप्ति के साथ ही बुझ जाती है। तब इह लीला के पूर्ण होने के साथ ही मृत्यु रूपी काल भी समाप्त हो जाता है।

हे जीवनयात्रा के पथिकों ! हमें कभी भी यह बात नहीं कहनी

चाहिए कि 'हम थे', 'हम हैं' या 'हम होंगे'। पथिकों के समान एक घर से चलकर दूसरे घर के वास का चिंतन मत करो कि एक घर को छोड़ूंगा और दूसरे घर में वास करूँगा, भूतकाल के भी किसी घर के सुखद या दु:खद वास को याद मत करो।* जिस समय प्राणी मरता है उस समय कुछ भी शेष नहीं बचता सिर्फ कर्मफल को छोड़कर। जो कुछ भी चैतन्य है उसका भी नाश हो जाता है। आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में वास नहीं करती है, सिर्फ प्राणी के कर्मों का फल ही विविध प्रकार से उसके पास रह जाता है। जिस समय प्राणी की मृत्यु होती है उस समय आत्मा और चेतना भी ज्वाला में जलकर नष्ट हो जाते हैं और प्राणी के कर्म फल के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता। इन्हीं कर्म फलों से फिर नए खण्डों की रचना होती है और एक नया प्राणी उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो नवीन प्राणी इस संसार में जन्म लेता है वह अपने लिए एक नया घरौंदा बनाने में ऐसे ही तल्लीन हो जाता है जैसे कि एक रेशम का कीड़ा अपने लिए सूत काटकर फिर नए कोष का निर्माण करता है। वह प्राणी अपने लिए सांसारिक सत्व और गुणों की वैसे ही रचना करता है जैसे एक सांप अपनी केंचुल को तज नए विष दंतों का सृजन करता है। समय के साथ यह नव जीवन विभिन्न शुभ-अशुभ दिशाओं

....

*बौद्ध लोग आत्मा को नश्वर मानते हैं; उसे अमर नहीं मानते। इससे कर्मवाद को विलक्षण रीति से उन्होंने अपने मत के अनुकुल किया है। प्राणी की मृत्यु होने पर उसके सब खंड-आत्मा आदि सब-नष्ट हो जाते हैं; केवल कर्म शेष रह जाते हैं जिनसे फिर नए खंडों की योजना होती है और एक नया प्राणी उत्पन्न होता है। पिछले प्राणी के साथ इस नए प्राणी का कर्मसूत्रसंबंध रहता है, इससे दोनों को एक ही प्राणी कह सकते हैं।

की ओर अग्रसित होता है और जीवन-लीला पूरी होने पर एक बार फिर काल का क्रूर चक्र इसे समाप्त कर देता है। इस जीवन की समाप्ति पर फिर केवल शुद्ध-अशुद्ध कर्म शेष रह जाता है और फिर प्राणी को वही झंझावात और वही नवीन कष्ट भोगने पड़ते हैं। जब किसी पुण्यात्मा का इस संसार से प्रस्थान होता है तो इस संसार की संपदा में कुछ वृद्धि हो जाती है और मंद-मंद सुगंधित पवन बहने लगता है जैसे मरूस्थल की कोई नदी बालू के मध्य लुप्त होकर किसी दूसरे स्थान पर स्वच्छ रूप से परिशुद्ध होकर निकल आती है। इस प्रकार शुभकर्मों द्वारा पुण्य अर्जित किया जाता है ताकि पाप उसकी निर्बाध प्रगति में बाधक न बन सके। इस संसार में धर्म ही सदैव सर्वोपरि रहता है। कल्प के अंत तक भी उसकी अचूक विधि चलती रहती है और वह कभी चुकती नहीं है। अज्ञानता ही तुम्हें इस भवसागर के भंवर में फंसाती है और तुम मिथ्या दृश्यों को सत्य मान इसके जाल में फंसते चले जाते हो। तुम कुछ पाने की कामना रखते हो और फिर नाना प्रकार के छद्म रूपों को पाकर उसी में उलझ जाते हो जो तुमसे छल करता है, धोखा करता है और तुम पर प्रहार करता है। जो कामसुख आदि विषयों का सेवन और शरीर को क्लेश देना इन दोनों अंतों का त्याग और मध्यम मार्ग **का ग्रहण कर इस भवसागर से पार होना चाहता है उसकी बुद्धि उस शांति के मार्ग को खोज ही लेती है। जो ध्यानस्थ होकर निर्वाण प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं वे ध्यानपूर्वक सुनें क्योंकि अब मैं चारों 'आर्य सत्य' के बारे में बतलाता हूँ।

....

**कामसुख आदि विषयों का सेवन और शरीर को क्लेश देना इन दोनों अंतों का त्याग और मध्यम मार्ग का ग्रहण।

आर्य-सत्य

पहला आर्य सत्य है- 'यह जीवन दु:खमय है।' यह जीवन जो तुम्हें अति प्रिय लगता है इसमें केवल दु:ख ही दु:ख है। इस जीवन में दु:ख ही मिलता है, सुख कभी आता ही नहीं। अगर कभी इस जीवन में सुख आता भी है तो वह एक पल के लिए वैसे ही आता है जैसे आकाश में उड़ता पक्षी एक पल के लिए अपनी झलक दिखा उड़ जाता है। अंत में केवल दु:ख और सिर्फ दु:ख ही रह जाता है। जन्म के समय अपार दु:ख मिलता है। शैशवावस्था के असहाय दिनों का दु:ख अत्यधिक घोर होता है। युवावस्था के कठिन तप का दु:ख और इन सबसे भी बढ़कर कामशक्ति का दु:ख अत्यधिक कठोर होता है। फिर वृद्धावस्था का दर्द और अंत में सांस रोक देने वाली पीड़ा, मृत्यु का दु:ख अति विकराल होता है और इस भांति समस्त जीवन काल दु:खों को सहते हुए ही बीत जाता है। प्रेम की अग्नि अत्यधिक माधुर्य पूर्ण होती है पर वह अधर जो चुंबन करने में न अघाता था वह भी और उस पयोधर को भी जो अति आनंद देता था, एक दिन अग्नि की लपटों में भस्माभूत हो जाना पड़ता है। संग्राम में वीरता और शौर्य का प्रदर्शन निश्चय ही अति भव्य है। किंतु उन वीर सम्राटों की बलिष्ठ भुजाओं को अन्ततः चील और गिद्ध ही नोचते हैं। सौंदर्य से परिपूर्ण यह वसुन्धरा सुन्दर दीखती है पर ध्यान से अपनी दृष्टि डालकर देखो। यहाँ की हर सुन्दर वस्तु घात लगाकर दूसरे का हनन करती है और फिर स्वयं भी हनन को प्राप्त होती है। यह नीला आसमान नीलम के समान चमकता है पर अन्न के बिना जब व्याकुल लोग त्राहि-त्राहि कर मरते हैं तो एक बूँद भी पानी नहीं देता है। किसी दु:खी या शोकग्रस्त, जिसने अपना प्रिय परिजन खो दिया है या जो लाठी टेककर चलता है उससे जाकर पूछो, "यह जीवन तुम्हें कैसा लगता है ?" उसका उत्तर यही होगा- "हम से ज्यादा बुद्धिमान तो जन्म लेने वाला शिशु है जो जन्म लेते समय रोता है क्योंकि उसे यह पता होता है कि जिस जीवन-यात्रा

को वह शुरू करने जा रहा है वह दु:खों का एक अंतहीन सागर है।"

दूसरा सत्य है - 'जीवन के दु:खों का कारण है और वह कारण है- तृष्णा, इच्छा।' कौन ऐसा दु:ख है जो तृष्णा से नहीं जन्मता ? *आयतन और स्पर्श जब बहुत भाँति इन्द्रिय विषय वस्तुओं से संबंध स्थापित कर लेती हैं तब काम रूपी ज्वाला का उद्भव होता है। जब इस प्रकार कामज्वाला मन में जलती है तो मनुष्य सब कुछ भूलकर स्वप्नलोक में विचरण करने लगता है। हम अपने इर्द-गिर्द अहम् भाव की मूर्ति बना लेते हैं और उसी काल्पनिक मूर्ति के चारों ओर अपना संसार बसा लेते हैं जिसके आगे न तो हमें कुछ सुनाई देता है और न ही दिखाई। कल्याणकारी मधुर संदेश कि "हे मानव ! आसक्ति को त्याग कर सत्य मार्ग पर चलो" तुम्हारे कर्ण बिन्दुओं तक कभी पहुँच ही नहीं पाता। गहरी तृष्णा और वैभव की कामना इस धरा पर कलह का प्रसार करती है। जिसके कारण भोग-विलास और ऐश्वर्य में लिप्त व्यक्ति तृप्ति के अभाव में एवं संतुष्टि से वंचित दीन-हीन हो आँसू ढारते रहते हैं और रोते-बिलखते रहते हैं। काम-क्रोध से मानव मन में ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, धोखा आदि कटु भाव उठते हैं और ये कटु भाव दिन-प्रतिदिन विकराल रूप लेते जाते हैं। इनके कुप्रभाव से जीवन वर्ष दर वर्ष रक्त-रंजित होता जाता है। जहाँ कभी अच्छा धन-धान्य उपजता था वहाँ आज विष वृक्ष अपनी जड़ें फैला रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप बड़े वीभत्स, क्रूर एवं कटुता से भरे फल-फूल ही चारों तरफ दिखलाई पड़ते हैं और वह स्थान जहाँ उत्तम बीज अंकुरित हो सके दृष्टिगोचर ही नहीं होता। जीवन की इन तृष्णाओं से जनित विष से पराजित हो प्राणी अपने प्राण त्याग देता है। कर्म

....

*बौद्ध शास्त्रों में मन सहित पाँच इंदियों के समूह को षडायतन और विषयों को स्पर्श कहते हैं।

सिद्धांत के अनुसार सांसारिक वस्तुओं से योग के लिए आतुर वह पुनः जन्म लेता है। इन्द्रियों के साथ कर्म बंधन के अनुसार संपर्क स्थापित कर उसे पुनः नई माया मिलती है और वह पुनः अहम् का संसार सृजित कर लेता है और फिर वही कहानी शुरू हो जाती है।

बंधु ! तीसरा आर्य सत्य है- 'दुःखों का निवारण संभव है।' दुःख निवारण से अपार आनन्द की अनुभूति होती है। यह अनुभूति तब होती है जब प्राणी अपनी समस्त तृष्णाओं, अनुराग एवं आसक्ति पर विजय पा लेता है, मन से वासना रूपी विष वृक्ष को समूल उखाड़ फेंकता है तथा अपने अंतस में चल रहे कलह को धैर्यपूर्वक शांत कर लेता है। यही सच्चा प्रेम मनुष्य के तन-मन में नवीन ऊर्जा का संचार करता है और इसी के प्रताप से मनुष्य अपने 'स्व' पर नियन्त्रण पा लेता है, स्वयं को जीत लेता है और तब वह उस अलौकिक आनन्द की अनुभूति करता है जो देवी-देवताओं की पहुँच से भी आगे है। इस अमूल्य निधि को हमें संजोकर रखना चाहिए क्योंकि यही हमारी सच्ची सम्पत्ति होती है।

दया, उपकार, दान, मधुर वाणी एवं सात्विक व्यवहार से इस स्थायी कोष में निरंतर वृद्धि होती रहती है। मनुष्य को सर्वदा इस अनश्वर धन का संचय करना चाहिए क्योंकि यह ही एक ऐसी सम्पत्ति है जो किसी भी लोक में जाने पर नष्ट नहीं होती अर्थात् अच्छे कर्म ही मनुष्य के मरणोपरान्त साथ होते हैं। सोचो साथ क्या जायेगा ?- अपने द्वारा किया गया अच्छा-बुरा कर्म ही ! जीवन-मरण के इस झंझावात तथा दुःखों से मुक्ति मिल सकती है अगर कर्म का लेखा-जोखा समाप्त कर दिया जाये, जैसे तेल की समाप्ति के पश्चात लौ नहीं उठ सकती। तब इस शरीर रूपी घर से मात्र बेघर होने की प्रथा की औपचारिकता ही बाकी रह जाती है अर्थात् शरीर से मुक्त होना मात्र बाकी रह जाता है। इस प्रकार इंसान को अपार शान्ति का अनुभव होता है।

चौथा आर्य सत्य है - 'मध्यम मार्ग।' यह पथ ही सर्वश्रेष्ठ और सुरक्षित है। यह मार्ग इतना सुगम और सुहावना है कि इसपर कोई भी चल सकता है। वस्तुतः यही मार्ग मात्र सच्चा मार्ग है। इस मार्ग के आठ सोपान हैं। यही अति सुन्दर मार्ग प्राणी को सीधा शांति की ओर निरंतर अग्रसर करता है। बर्फ से ढ़ँके हुए पर्वत शिखर, जिसके चहुंदिक सोने से मंडित मेघ छाए रहते हैं, वहाँ पहुँचने के कई रास्ते हैं। कुछ मार्ग अति सुढाल अर्थात् अति सुगम हैं और कुछ अति कुढाल अर्थात् अति दुर्गम। परन्तु ये सभी मार्ग पथिक को शांति-धाम तक पहुँचाते हैं। जो समर्थ हैं वे इस दुर्गम पर्वत शिखर पर कूदते-फांदते और अटपटे मार्गों से शीघ्र ही पहुँच जाते हैं। जो असहाय, असमर्थ, कमजोर हैं वे सुगम्य मार्ग पकड़कर, सँभलकर चलते हुए, बीच-बीच में रुकते हुए, बहुत सारे चक्कर लगाकर पहुँचते हैं। ऐसा है यह अष्टांग मार्ग, अति प्रकाशमय जो अन्ततः पथिक को उसके लक्ष्य, शांति-धाम तक पहुँचाता ही है। दृढ़संयमी और दृढ़संकल्पी प्राणी इस मार्ग की कठिन चढ़ाई को भी आसानी से पार कर लेते हैं। निर्बल-जन आशावादी होकर धीरे-धीरे इस मार्ग पर यदि चलते जाते हैं तो अन्ततः बेचारे वे भी कभी न कभी अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाते हैं।

इस मार्ग का पहला सोपान है 'सम्यक दृष्टि'। इस मार्ग पर पाप को त्यागकर धर्मानुसार चलते रहना चाहिए। कर्म का सार ही भाग्य का निर्माता है। इसलिए इन्द्रियों पर नियंत्रण कर विषय-वासनाओं से निवृत्त हो जाओ। यह भी कदापि मत भूलो कि जैसा बीज होगा, वैसा ही फल निकलेगा। अगर हम बबूल के बीज बोयेंगे तो काँटे ही काँटे काटेंगे। आम के बीज बोयेंगे तो आम के मीठे फल खायेंगे। गन्ने का बीज बोयेंगे तो जो कुछ भी प्राप्त होगा उसके रेशे-रेशे में मिठास होगी। यह कुदरत का शाश्वत नियम है और इसमें किसी भी प्रकार के भेद-भाव या बदलाव का कोई मार्ग नहीं है। 'सम्यक संकल्प' इस मार्ग का दूसरा सोपान है। सम्यक संकल्प होने से मनुष्य के हृदय से सभी जीवों के प्रति हित की

भावना से चित्त दूर नहीं जाता है, सच्चे मार्ग से कभी विचलित नहीं होता है। क्रोध और लोभ का दमन कर सारी निर्दयता त्याग दो जिससे जीवन गति सुगंधित समीर के समान हो जाये। दूसरों के प्रति सही सोच से, मन को दूषित न होने देने से वरण इसे पवित्र और कल्याणमयी रखकर हम अपना ही कल्याण करते हैं। 'सम्यक वाणी' इसका तीसरा अंग है। शब्दों का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए मानो मुख के अंदर राजा विराजते हों अर्थात् जैसे एक राजा सोच-समझकर, संयमित, संतुलित वाणी का उच्चारण करता है उसी प्रकार हमें भी नपे-तुले शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। अपने मुख से सोच-समझकर ही कुछ भी उच्चारित करना चाहिए। तुम जो शब्द भी बोलो वह शांत, मीठा और सबके मन को अच्छा लगने वाला हो। इस मार्ग का चौथा अंग 'सम्यक कर्म' है। शुभ कर्म करने से पुण्य का सृजन होता है और पाप कर्मों का नाश होता है। इस संसार में तुम जितने भी कर्म करो वह तुम्हारी अच्छाई बढ़ाए और बुराई का नाश करे। शुभ कर्मों में तुम्हारा प्रेम ऐसे झलके जैसे श्वेत चाँदी का धागा पारदर्शी मोतियों की माला के अन्दर दिखता है। 'सम्यक आजीविका' इसका पाँचवा अंग है। मनुष्य की आजीविका ऐसी होनी चाहिए जो किसी दूसरे को कष्ट देकर अर्जित नहीं की गई हो। समाज में निषिद्ध कर्मों द्वारा जीविका नहीं चलानी चाहिए। माँस बेचकर, मदिरा अथवा अन्य नशीले पदार्थों के क्रय-बिक्रय के द्वारा जीवन-यापन करना बुरे कर्मों को अर्जित करता है। अतः इससे बचना वांछनीय है। 'सम्यक व्यायाम' से आलस्य और शिथिलता को दूर करो। मनुष्य को उचित परिश्रम कर तन और मन के आलस्य को हटाना चाहिए। 'सम्यक स्मृति' से ही मनुष्य का ज्ञान स्थायी होता है और यह स्थायी ज्ञान ही सदैव साथ रहता है। ऊपर वर्णित सात अंगों को साधकर मनुष्य आठवें अंग 'सम्यक समाधि' पर आता है। यहाँ पहुँच सुख-दुःख सभी में मनुष्य समभाव हो जाता है। अपने हृदय को सत्य से विचलित नहीं होने देना चाहिए। इस प्रकार जो व्यक्ति समभाव

चित्त को एकाग्रचित करता है, वही मनुष्य मुक्ति के उपाय को खोज पाता है।

जैसे एक पक्षी यथा सामर्थ्य आकाश में एक ऊँचाई तक ही जाता है उसी प्रकार बिना शक्ति प्राप्त किए ऊपर जाकर मत उड़ो। नीचे के धरातल पर ही सुकर्म करते हुए चलते रहो। पथ के प्रारम्भ से ही सद्कर्मों द्वारा शक्ति जुटाते चलो। उसी मार्ग को पहले पकड़ो जो तुम्हारा जाना-पहचाना है। वहाँ मार्ग में ठहर कर, फिर आगे बढ़ो। गृहस्थ जीवन में पत्नी और पुत्र तुमको अति प्रिय लगें किन्तु तुमको यह भी विचार करना चाहिए कि तुम्हारा आहार-विहार, तुम्हारी मित्र मंडली सुखद कैसे हों क्योंकि बिना सद्कर्मों के सच्चा सुख नहीं मिलता। दान देना और दयावान बनना सुन्दर कर्मों का सृजन करता है जबकि झूठ भय को जन्म देता है। उस जीवन को अपनाओ जो मंगलमय हो। पापों का नाश कर सुख के नए सोपान बनाओ। सांसारिक मोह-माया के मध्य से अपना मार्ग निकालकर उस सच्चे, सुन्दर एवं कल्याणकारी सत्य धर्म मार्ग पर सदैव बढ़ते रहो। इस प्रकार तुम ऊँची भूमि की ओर अग्रसर होते जाओगे और पापकर्मों का भार हल्का कर सुगमता से प्रगति करते जाओगे। इस तरह तुम्हारा संकल्प दृढ़ से दृढ़तर होता जाएगा और धीरे-धीरे सारे मायावी बन्धन क्रमशः टूटते जायेंगे और तुम्हें अलौकिक प्रकाश का मार्ग प्राप्त हो जायेगा।

मुक्ति मार्ग की पहली स्थिति जो प्राप्त कर लेता है वह मनुष्य 'श्रोतापन्न' कहलाता है। वह अपने समस्त भय त्यागकर सदैव पुण्य कर्मों में तल्लीन रहता है और अन्त में मंगलमय निर्वाण धाम प्राप्त कर लेता है। द्वितीय अवस्था 'सकृदागामी' की है जिसमें तीनों वर्जनायें हट जाती हैं। उसकी बुद्धि एवं कर्म नेक हो जाते हैं। हिंसा, आलस्य एवं काम भावना से वह दूर हो जाता है और उसे बस एक जन्म और लेना पड़ता है। फिर 'अनागामी' की तीसरी अवस्था प्राप्त करता है। आलस्य, हिंसा,

काम, विचिकित्सा व मोह का त्याग कर 'पंच प्रतिबंधों'* से मुक्त हो जाता है। अब उसका इस पृथ्वी लोक में जन्म नहीं होता और इस संसार को त्यागकर वह दिव्यलोक में स्थान पा लेता है। 'अर्हत' की अवस्था इन सब अवस्थाओं में सर्वोपरि है जब जन्म-मरण व सांसारिक बंधन लेश मात्र भी शेष नहीं रहते हैं। समस्त दु:खों से परे, सारे मोह-माया से मुक्त वह उस पद पर आसीन हो जाता है जिसके बुद्धगण अधिकारी होते आये हैं। अर्हत्व पाने के पश्चात् मनुष्य की स्थिति ऐसी होती है जैसे वह हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर विराजमान हो तथा उसके ऊपर नीले अम्बर को छोड़कर और कुछ भी न हो। सारे देवतागण उससे नीचे रह जाते हैं। तीनों लोकों में यदि प्रलय भी आ जाए तब भी वह अपने स्थान से डिगता नहीं। सृष्टि का समस्त जीवन अब उसका हो जाता है और उसके हितार्थ मृत्यु की भी मृत्यु हो जाती है। उसका जीवन सब रूपों में विद्यमान होता है। उसके लिए अब क्षुद्र कर्म बंधन नहीं बनते और न उसके लिए नित नए आबन्धों का निर्माण होता है। वह सब कुछ प्राप्त करने में समर्थ होता है किन्तु उसकी समस्त कामनाएं, इच्छाएं मर जाती हैं। वह अहं भाव को त्यागकर इस संसार को पूर्ण रूप से आत्ममय भाव से निहारता है। यदि तुम्हें कोई बतलाता है कि 'नष्ट हो जाना ही निर्वाण कहलाता है' तब निश्चय ही तुम उसको कह दो- 'तुम झूठ बोलते हो। तुम्हें इस रहस्य का पता नहीं।' यदि कोई कहता है कि 'जीना ही निर्वाण कहलाता है।' तो तुम उसको कह दो - 'व्यर्थ ही तुम भ्रम पैदा कर रहे हो।' निर्वाण को न तो कोई सुनकर और न कहकर ही समझ सकता है इसलिए व्यर्थ में ही विवाद क्यों बढ़ाया जाए ? हमारे टिमटिमाते जीवन दीप से जो उजियाला फैला है उसके आगे कौन सी ज्योति है उसको जानने वाला कौन है ?

....

*पंच प्रतिबंध- आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा, मोह।

इस मार्ग पर अग्रसर होवो- द्वेष से बढ़कर जग में कोई दु:ख नहीं है। राग से बढ़कर क्लेश और इन्द्रियों के भोग से बढ़कर कोई कष्ट नहीं है। जिसने पाप का मर्दन कर दिया है वह पवित्र नर मुक्ति मार्ग पर दूर तक बढ़ जायेगा।

इस मार्ग पर प्रवेश करो। इसमें ही वह सुधा का स्रोत है जिससे सकल प्यास बुझती है और भ्रम दूर होता है। इसमें ही वे अमर, मनोहर कुसुम खिलते हैं जो पथ पर पाँवों के तले बिछ जाते हैं। भ्राता ! इसी में वह सुख की घड़ी प्राप्त होती है जो परम मधुर लगती है। इन शिक्षमाण धर्मरत्नों को सबसे बढ़कर मानो और इसे अमृत से भी अधिक मधुर जानो।

जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो उतना लेन-देन इस संसार में करो किन्तु लालच में आकर छलपूर्वक कुछ भी मत लो। झूठा साक्षी मत बनो अर्थात् झूठी गवाही मत दो, जान बूझकर किसी की व्यर्थ निन्दा मत करो। सदैव सत्य बोलो क्योंकि सत्य ही शुद्धता की खान है। विष समान मद्य पान मत करो क्योंकि मद्यपान मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट कर उसका समस्त ज्ञान हर लेता है। जिसका अन्त:करण शुद्ध है भला उसको सोमरस के पान की क्या आवश्यकता ? भूल से भी पराई स्त्री पर कुदृष्टि मत डालो। अपने इन्द्रियों को पाप कर्म में मत लगाओ। हे भ्राता ! यह सब कर तुम अपने पंथ को सुधार ऊपर की तरफ बढ़ते जाओगे।

दया के नाते कभी भी हे भ्राता ! जीव हिंसा मत करो। क्षुद्र से क्षुद्र जीव भी अपना जीवन गँवाना नहीं चाहता। सभी प्राणी अपने कर्मों का भोग भोगकर ऊँचे पंथ की ओर अग्रसर होना चाहते हैं और होते रहते हैं। उनको बीच में ही मार कर उनकी प्रगति में बाधक मत बनो।

उस सारी रात बुद्ध कपिलवस्तु में विराजमान पुरजनों, परिजनों

तथा समस्त समाज पर अखंड उपदेश की अमृत वर्षा करते रहे। उस रात किसी ने भी अपनी पलकें नहीं झपकाईं। नींद आँखों से कोसों दूर थी। मानो यह वसुन्धरा भी ईश वचनों में निमग्न हो गई थी।

जब बुद्ध का उपदेश समाप्त हुआ तब राजा शुद्धोदन आगे आए और उनका चीवर माथे लगा श्रद्धापूर्वक शीश झुकाकर बोले, "हे सुत !" फिर जरा संभलकर कहा "हे दयामय ! मुझे भी एक क्षुद्रजन समझकर बौद्ध संघ में शामिल कर लें" और फिर यशोधरा आनन्दमग्न होकर प्रभु से बोली, "हे मंगलमय ! कृपा कर राहुल पर भी दया कर उसे अपना उत्तराधिकार प्राप्ति हेतु 'उपसंपदा'* दें, धर्म की दीक्षा देकर उसका जीवन भी सुखमय बना दो।" इस तरह 'शाक्य' राजकुल के तीनों व्यक्ति राजा शुद्धोदन, यशोधरा और राहुल शांत-चित्त होकर धर्म मार्ग पर अग्रसर हो गए।

फिर तथागत ने बौद्ध धर्म के सभी अंगों के बारे में, माता-पिता, बंधु, प्रियजन और इष्ट मित्रों - सभी के प्रति कर्त्तव्यों को सविस्तार बता दिया। दैनिक व्यवहार कैसा होना चाहिए यह भी समझाकर बता दिया तथा गृहस्थ उपासकों को धर्म का सार तत्व समझा दिया। अगर कोई व्यक्ति तत्काल इंद्रियों के बंधन न काट सके, यदि उसके पैर अशक्त हों और वह धीमी चाल चलता है तो वह संयम, नियम से दयापूर्वक धर्म का निर्वाह करते हुए कल्मषहीन जीवन व्यतीत करे जिससे उस पर पाप की आँच न लग सके। जो इस भाँति शुद्ध और गंभीर होकर चलते हैं, दयावान, सुजान, श्रद्धावान और धीर-मति हो, अहंकार छोड़, सकल जीवन पर ध्यान देते हुए वे 'अष्टांग मार्ग' पर अपना पहला पाँव रखते हैं। जीव को जग में जो भी दु:ख या सुख प्राप्त होता है, वह उसके ही शुभ या अशुभ का कर्म फल होता है। जीवन में और कुछ नहीं होता है। स्वार्थ

....

*बौद्ध लोग श्रमण या भिक्षु धर्म की दीक्षा को उपसंपदा कहते हैं।

त्यागकर गृहस्थ जग में जितना उपकार करता है, जब वह दूसरी बार जीवन धारण करता है तब वह उतना ही सुख प्राप्त करता है।

एक दिन जब बुद्ध वेणुवन की ओर जा रहे थे तब उन्हें एक निर्मल गृहस्थ सुबह-सुबह स्नान करता हुआ दिखा। वह बार-बार आकाश की ओर हाथ जोड़कर शीश नवा रहा था और धरती की वंदना कर रहा था। मुँह से कुछ बोलता और फिर कुछ अक्षत हाथ से उठाकर छितरा देता। सभी दिशाओं में अक्षत फेंककर सिर नवाता जा रहा था। तब बुद्ध ने उसके समीप जाकर उससे यह बात पूछी, "हे भ्राता ! तुम इस भाँति सिर क्यों नवा रहे हो ?" गृहस्थ ने उत्तर दिया, "करुणामय ! मैं नित्य उठकर पूजन करता हूँ। देवतागण और अपने पितृजनों के प्रति श्रद्धा अर्पित कर अपना कल्याण चाहता हूँ।" तब जगदाराध्य बोले, "तुम इस प्रकार अक्षत क्यों बिखेर रहे हो ? सभी जीवों के प्रति दया और प्रेम का प्रसार क्यों नहीं करते ? माता-पिता को पूर्व दिशा मानो जहाँ से ज्योति का उदय होता है। गुरू को दक्षिण दिशा मानो जहाँ से निधि की प्राप्ति होती है। पुत्र और पत्नी को पश्चिम मानो जहाँ शांति विद्यमान रहती है और जहाँ से अनुराग रंजित दिवस का अवसान होता है। बंधु, बांधव एवं इष्ट मित्रों को उदीची मान उन पर भक्ति, श्रद्धा और प्रेम का विस्तार करो। क्षुद्र जीवों के प्रति मन में दया धारण करो। धरती इसी प्रकार का पूजन चाहती है, जीवन से और कुछ नहीं चाहती है। स्वर्ग में जो देवता और पितृजन बसते हैं उनमें भक्ति रखो। इसके अतिरिक्त और किसी विधान की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर तुम इस रीति से गृहस्थ जीवन में चलोगे तो तुम्हारी रक्षा होती रहेगी और तुम्हारे मन में कोई भय नहीं रहेगा।"

गृहस्थ जीवन की भाँति ही बुद्ध ने बौद्ध भिक्षुओं के कल्याणार्थ 'संघ' में धर्म-व्यवस्था की स्थापना की। बौद्ध भिक्षुओं को तथागत ने आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों के समान ही जीवन जीने की सीख

दी। जिस तरह पक्षी अपना घोंसला छोड़कर भिन्न-भिन्न स्थानों पर विहार करते हैं उसी भाँति बौद्ध भिक्षुओं को भी विचरना चाहिए।

उन्होंने हिंसा, सत्य, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, प्रमाद, अपराह्न-भोजन, नृत्यगीतादि, मालागंधादि, उच्चासन शय्या और द्रव्यसंग्रह का त्याग इत्यादि दशशील [1] और स्मृति, धर्म प्रविचय (पुण्य), वीर्य, प्रीति, पश्राब्धि, समाधि और अपेक्षा आदि सात बोध्यंग [2] सभी को सिखाए। असामान्य ऋद्धिपाद [3] क्षमता की प्राप्ति हेतु उन्होंने श्रद्धाबल, समाधिबल, वीर्यबल, स्मृतिबल और प्रज्ञाबल रूपी पंचबल [4] को भी समझाया। उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के आठ सुन्दर विमोक्ष [5] सोपानों के बारे में भी बतलाया। उन्होंने चतुर्विद ध्यान [6] की भी सविस्तार व्याख्या की।

....

1. दशशील- हिंसा, स्त्येन, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, प्रमाद, अपराह्न- भोजन, नृत्यगीतादि, मालागंधादि, उच्चासन शय्या और द्रव्यसंग्रह का त्याग।
2. बोध्यंयग- स्मृति, धर्मप्रविचय (पुण्य), वीर्य्य, प्रीति, पश्रब्धि, समाधि और अपेक्षा।
3. ऋद्धिपाद- अर्थात् असामान्य क्षमता की प्राप्ति।
4. पंचबल- श्रद्धाबल, समाधिबल, वीर्य्यबल, स्मृतिबल और प्रज्ञाबल।
5. अष्टविमोक्षसोपान-

(i) रूपभावना के कारण वाह्य जगत् में रूप दिखाई पड़ना

(ii) मन में रूप भावना न रहने पर भी बाह्य जगत् में रूप दिखाई पड़ना

(iii) न मन में रूपभावना रहना न वाह्य जगत् में दिखाई पड़ना

(iv) रूपलोक अतिक्रमण कर अनंत आकाश की भावना करते हुए 'आकाशानंत्यायतन' में विहार

(v) 'आकाशानंत्यायतन' का अतिक्रमण कर अनंत विज्ञान की भावना करते हुए 'विज्ञानानंत्यायतन' में विहार

(vi) विज्ञानानंत्यायतन का अतिक्रमण कर 'अंकिचन' (कुछ नहीं) की भावना करते हुए अकिंचन्यायतन में विहार

(vii) अकिंचन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानैवासंज्ञायतन (ज्ञान और अज्ञान दोनों नहीं) की भावना करते हुए नैवसंज्ञानैवासंज्ञायतन में विहार

(viii) अंत में ज्ञान और ज्ञाता दोनों का निरोध कर 'संज्ञावेदयितृ' उपलब्ध करना।

6. आठ विमोक्ष सोपानों में से तीसरे से सातवें तक को चतुर्विध ध्यान कहते हैं।

जो प्राणी इस क्षारसम भवसागर से पार हो पाता है वह अमृत से भी बढ़ कर मीठा फल पाता है। मैत्री, दया-भावना, उपेक्षा और मुदिता* अंगों को भावपूर्वक धारण करो। अंत में भिक्षुओं को शिक्षमाण ** सारे रत्न देकर जगदाराध्य बोले कि भिक्षु सदैव बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों (बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाना) को धारण कर मध्यम मार्ग पर अग्रसर रहे। भिक्षुओं के लिए आचार-व्यवहार के सभी नियम निर्धारित किए और उन्हें बताया कि किस प्रकार वे राग और सांसारिक भोग-विलास से दूर रह सकते हैं। भिक्षुओं के लिए रहन-सहन, खान-पान और परिधान निश्चित किए। भिक्षु केवल तीन चीवर धारण कर सकते हैं जिनमें पहला अन्त:वस्त्र, फिर उसके ऊपर 'उतरासंग' और 'संघाती' पहन सकते हैं। भिक्षु सदैव अपना भिक्षा-पात्र और बिछौना साथ रखें और उससे ज्यादा सामग्री का संग्रहण न करें। इस प्रकार श्री तथागत बौद्ध संघ बनाते रहे और संसार का कल्याण करते रहे।

परिनिर्वाण

बुद्ध कभी राजगृह तो कभी वैशाली में घूमकर, तो कभी श्रावस्ती और कौशाम्बी में कुछ दिन रहकर लोगों को उपदेश देते रहे और संघ में शामिल करते रहे। वर्षाकाल में एक जगह रहकर लोगों को उपदेश सुनाते रहे और भूले-भटकों को मध्यम मार्ग दिखाकर उचित मार्ग पर लाते रहे। उन्होंने अपना अधिकतर समय श्रावस्ती स्थित जेतवन में बिताया और वहां लोगों को धर्म का सार समझाया। पैंतालीस चौमासों *** (वर्षों)

....

*मुदिता-संतोष।

**मार्ग, ऋद्धि, बल आदि सब मिलकर सप्तत्रिंशच्छिक्षणमाण धर्म कहलाते हैं।

***बौद्ध भिक्षु वर्षा या चौमासे भर एक ही स्थान पर रहते हैं।

पर्यन्त वे अनवरत रूप से लोगों को इस वसुन्धरा पर धर्म तत्व बताते रहे। उनके दिव्य प्रकाश से इस संसार में ऐसा उजियारा फैला कि सब देशों को कल्याणकारी मार्ग दिखाई दे गया। इस संसार के आधे मनुष्य अपने हृदय में आज उनका ध्यान करते हैं और उनकी दिव्य आभा से ये सारे मत आलोकित हैं। जब उनको अपना अंतकाल निकट दिखाई दिया तो बुद्ध एक दिन अपने सब शिष्यों को साथ ले पावापुरी पहुँच गए। चुंद नाम के कारीगर के घर कृपा कर उन्होंने भोजन ग्रहण किया। वहां से रोग ग्रस्त होने पर कुशीनगर चले आए और वहां दो शाल शाखों के बीच शैय्या डाल कर लेटे रहे। घोषणा कर दी गई कि बुद्ध शरीर त्यागने वाले हैं। अतः दूर-दूर से भी शिष्यगण, भिक्षु तथा गृहस्थ उनके दर्शन हेतु आने लगे। एक गृहस्थ ने अंतिम शिष्य के रूप में प्रश्न किया और अपने प्रश्नों का उत्तर पा भिक्षु बन गया। सभी भक्त दर्शन पाकर शांत चित्त हो गए। तब तथागत महापरिनिर्वाण में लीन हो गए और इस संसार को त्याग दिया। वे मनुष्यों में मनुष्य के समान रहे और सबको सही मार्ग दिखलाते रहे। अन्ततः वे परम शून्य में सहज रूप से समा गए।

इस प्रकार जगदाराध्य तथागत का यह चरित्र जिसका मैं अब तक गुणगान करता रहा, पूर्ण होता है। मैं उनके विषय में अल्पमात्र ज्ञान रखता हूँ और उसे कहना भी नहीं जानता, फिर भी भक्तिवश मैंने यह कहने का साहस किया है। मैं इसमें अपनी गलतियों को सहज भाव से स्वीकार करता हूँ। मेरी इस अल्प बुद्धि के त्रुटियों के सामने तथागत का चरित्र अवर्णनीय है। इसलिए मैं अपनी त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं उनकी दया पर आश्रित हूँ।

बुद्धं शरणं गच्छामि, मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ !
धम्मं शरणं गच्छामि, मैं धर्म की शरण में जाता हूँ !
संघं शरणं गच्छामि मैं संघ की शरण में जाता हूँ !

बूँद कमल के पत्ते पर पड़ी है। हे सूर्य देव ! अपने तेज से उस पर्ण को उठा दें, उसे लहर से मिला दें।

ओं मणिपद्मे हुं। सूर्योदय हुआ ! ओस की बूँद चमचमाते महासागर में समाहित हो गई।

हृषीकेश शरण

जन्म बेतिया, पश्चिम चंपारण, बिहार। पटना विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। 1975 में भारतीय राजस्व सेवा (केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क) में प्रवेश किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और ऑपरेशनल रिसर्च सोसाइटी आफ इण्डिया से ऑपरेशनल रिसर्च में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा प्राप्त किया। 1994 में कैलास मानसरोवर यात्रा के यात्री दल का नेतृत्व किया। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया। विभिन्न पदों पर आसीन रहने के बाद इन दिनों कोलकाता में मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर के पद पर कार्यरत हैं।

पिछले 34 वर्षों से बुद्ध की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। कालेज के दिनों से ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। बुद्ध के जीवन एवं शिक्षा, होलिस्टिक मैनेजमेन्ट एवं अन्य विषयों पर संपूर्ण भारत में व्याख्यान देने के अलावा युगाण्डा, केन्या, तंजानिया, जाम्बिया, निदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर एवं भूटान में भी व्याख्यान दे चुके हैं। 2007 में सर एडविन ऑरनाल्ड की पुस्तक "लाइट ऑफ एशिया" का हिन्दी पद्यानुवाद "जगदाराध्य तथागत" के रूप में किया। कैलास मानसरोवर यात्रा पर संस्मरण भी लिखा है। संपूर्ण सचित्र धम्मपद : गाथा एवं कथा के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया के तत्वावधान में दिनांक 9 मई 2009 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन कोलकत्ता में किया जा चुका है।

प्रस्तुत पुस्तक "लाइट ऑफ एशिया" का गद्यानुवाद है।

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and people would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA

南無阿彌陀佛

【印度 HINDI 文：LIGHT OF ASIA】

財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not for sale.

यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

Printed in Taiwan
5,000 copies; Julyr 2012
IN064-10586